

जीवट एवं संकल्पशक्ति
के धनी
पराक्रमी व्यक्तित्व

— श्रीराम शर्मा आचार्य

जीवट एवं संकल्प शक्ति के धनी पराक्रमी व्यक्तित्व

लेखक :

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. : ०९९२७०८६२८९, ०९९२७०८६२८७

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१४

मूल्य १२.०० रुपये

प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि

मथुरा (उ. प्र.)

लेखक :

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

मुद्रक

युग निर्माण योजना प्रेस,

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

नई दुनिया की खोज करने वाला

कर्मवीर कोलंबस

संसार में महापुरुष अनेक श्रेणियों के होते हैं। हमारे यहाँ के सामान्य जन तो इतना ही समझते हैं कि लोग एकांत में रहकर तपस्या करते हैं, कंदमूल, फल या दूध आदि पर निर्वाह करते हैं, दाढ़ी और सर के बालों को बढ़ाए रहते हैं, अवसर पड़ने पर किसी व्यक्ति को आशीर्वाद देकर उसका दुःख दूर कर सकते हैं, वे ही महात्मा अथवा महापुरुष हैं। पर यह धारणा बड़ी संकुचित है और वर्तमान परिस्थितियों में भ्रमपूर्ण भी है। इसमें संदेह नहीं कि किसी युग में भारत के ऋषि-मुनि जिनमें से अनेक निश्चय ही महापुरुष थे, इसी प्रकार रहते थे। वह समय ऐसा ही था जबकि देशकाल के अनुसार सभी लोग बहुत सीधा-सादा और प्राकृतिक जीवन बिताते थे। उस समय समाज एवं व्यक्तियों की सेवा और भलाई करने की इच्छा रखने वाले महापुरुषों को और भी सरल, अपरिग्रही व तपस्यामय जीवन बिताना पड़ता था, क्योंकि इन्हीं साधनों से वे दूसरे लोगों का उपकार करने में समर्थ होते थे।

पर अब समय बहुत अधिक बदल गया है। आवागमन, संसार में होने वाली घटनाओं की जानकारी, व्यापार-व्यवसाय, वैज्ञानिक आविष्कार आदि की अभूतपूर्व वृद्धि के कारण मनुष्यों का जीवन वैसा सीधा और स्वाभाविक रह सकना असंभव हो गया है, जैसा कि कुछ हजार वर्ष पहले था, पर इसका यह अर्थ नहीं कि आजकल महापुरुष नहीं होते अथवा वे पुराने समय वालों की अपेक्षा हीन हैं। उस समय जिस प्रकार जटाजूट रखकर लँगोटी से ही काम चला लेने वाले अधिकांश में इस श्रेणी में आते थे, उसी प्रकार आज कोट-पतलून, हैट-बूट धारण करने वाले और होटलों में रहकर डबल रोटी और चाय से पेट भरने वाले भी महापुरुष माने जाते हैं। ऐसे लोगों में से किसी ने अपने बढ़िया बँगले त्यागकर कठिन वन्य प्रदेशों में रहकर बीमारों की

चिकित्सा में अपना जीवन लगाया है, किसी ने अभावग्रस्त जीवन बिताने वाले अर्द्धसभ्य लोगों को शिक्षित बनाकर प्रगति-पथ पर अग्रसर किया है, किसी ने स्वयं अस्वास्थ्यकर और कष्टप्रद परिस्थितियों में रहकर अनेक जनोपयोगी आविष्कार करके सर्वसाधारण के जीवन को सुखी बनाने का प्रयत्न किया है। इन सब लोगों ने ये सब कार्य जन कल्याण की भावना से ही किए और स्वयं उनका कुछ लाभ नहीं उठाया, इसलिए हम उनकी गणना महापुरुषों में ही करते हैं।

क्रिस्टोफर कोलंबस (सन् १४४९ से १५०६) भी इसी श्रेणी का महापुरुष था। चाहे वह एक जहाजी कर्मचारी ही था और उसका रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा एक सामान्य यूरोपियन की ही तरह थी, पर उसने मानव जाति का ज्ञान बढ़ाने और लाखों व्यक्तियों को जीवन-निर्वाह का साधन प्राप्त कराने में घोर परिश्रम किया और अपने प्राणों को बार-बार खतरे में डाला, इसलिए आज वह 'नई दुनिया के अन्वेषणकर्त्ता' के नाम से संसार में प्रसिद्ध हैं और यूरोप से अमेरिका पहुँचने वाले यात्री को सर्वप्रथम उनकी मूर्ति का ही दर्शन होता है।

वास्तव में वह संसार के उन कर्मवीर मनुष्यों में से था, जो अपने अपरिमित परिश्रम, सच्ची लगन और ज्ञान की खोज का लक्ष्य लेकर जीवन भर अध्यवसाय करते रहे और उसके फल से मानव-सभ्यता को आगे बढ़ाया। हमारे कहने का आशय यह नहीं कि वह प्राचीन भारतवासियों के आदर्शानुसार कोई त्यागी, तपस्वी, साधु-संतों के समान था, वरन उसने एक सामान्य मनुष्य का सा जीवन व्यतीत करते हुए वह काम कर दिखाया जिससे आगे चलकर लाखों मनुष्यों ने लाभ कमाया और अमेरिका जैसा बड़ा महाद्वीप जंगली और अर्द्धसभ्य अवस्था से प्रगति करके मानवीय सभ्यता का एक बहुत महत्वपूर्ण केंद्र बन गया। ऐसे व्यक्ति संसार के इतिहास में कर्मवीर माने जाते हैं और अपने लोकोपयोगी कार्यों से सर्वसाधारण के सामने ऐसा उदाहरण रखते हैं जिससे प्रेरणा ग्रहण करके वे भी संसार की भलाई का कोई काम कर सकने में समर्थ हो सकें।

कोलंबस जिनोआ (इटली) के निवासी एवं साधारण जहाजी का पुत्र था। उसने बाल्यावस्था में शिक्षा तो थोड़ी सी ही पाई थी, पर

अपने पिता तथा भाइयों के संग में रहकर किशोरावस्था में ही एक चतुर जहाजी बन गया था। स्कूल में मार्कोपोलो का भ्रमण वृत्तांत पढ़ लेने से उसके भीतर पूर्वीय देशों की जानकारी प्राप्त करने की अभिलाषा उत्पन्न हो गई थी। उस समय तक यूरोप और एशिया का जो कुछ संपर्क था, वह सब स्थल मार्ग द्वारा ही था। उसी रास्ते से किसी जमाने में रोम वाले भारत और चीन के साथ व्यापार करते थे और उसी के द्वारा सिकंदर ने भारतवर्ष तक सैनिक अभियान किया था। पर जब सन् १४१३ में तुर्कों ने यूरोप और एशिया के केंद्र स्थान कुस्तुनतुनिया पर कब्जा कर लिया तो वह स्थल मार्ग बंद हो गया। उसके पश्चात यूरोप के व्यापारी समुद्र द्वारा भारतवर्ष और अन्य एशियाई देशों तक पहुँचने की कोशिश करने लगे, पर उस समय तक उनको पृथ्वी के नक्शे का कुछ भी ज्ञान न था और उनके जहाज भी समुद्र में हजार-पाँच सौ मील की यात्रा करके ही वापस आ जाते थे। इससे आगे की जानकारी लोगों को कुछ भी नहीं थी और वे समझते थे कि यूरोपियन तट के पश्चात सर्वत्र समुद्र ही समुद्र है, जिसके अंतिम छोर का कोई पता नहीं।

कोलंबस की विशेषता यही थी कि उस अज्ञान के युग में भी उसने संसार के नए प्रदेशों को खोजने का संकल्प किया और अपनी कल्पना शक्ति से यह भी निश्चय किया कि पृथ्वी की आकृति गोल है तथा समुद्र में एक दिशा में यात्रा करते हुए पृथ्वी का चक्कर लगाते हुए दूसरी दिशा से पुनः उसी स्थान पर पहुँचा जा सकता है। यह बात आजकल सुनने में तो बहुत साधारण जान पड़ती है और स्कूल में पाँचवें-छठे दरजे में पढ़ने वाला एक छोटा विद्यार्थी भी इसे जानता है, पर आज से ५०० वर्ष पहले इस विषय में क्या स्थिति थी, उस पर ध्यान देने से ही कोलंबस की महत्ता ध्यान में आ सकती है। उस समय यूरोप के बड़े से बड़े विद्वानों को इसकी जानकारी होना तो दूर किसी को इसकी सचाई पर विश्वास भी नहीं होता था। इतना ही नहीं, जो कोई ऐसी बात मुँह से निकालता तो उसे झूठा और नास्तिक समझकर उसकी बड़ी दुर्दशा की जाती थी। जब इटली के ज्योतिर्विज्ञान ज्ञाता गैलीलियो ने सर्वप्रथम प्रकट रूप से पृथ्वी के गोल होने की बात कही तो पोप की आज्ञा से उसे जेलखाने में डाल दिया गया और वहाँ वर्षों

तक उसे तरह-तरह के कष्ट सहन करने पड़े। इसी प्रकार विज्ञान के अन्य अनेक विषयों की खोज करने वालों को भी उस समय अंधविश्वासियों द्वारा दंडित होना पड़ता था।

इसलिए किसी महासागर को पार करके नए महाद्वीप की खोज करने वाले के सम्मुख समुद्री तूफानों तथा पानी में डूबी चट्टानों से ही नष्ट हो जाने का भय ही नहीं था, वरन किसी अंधविश्वासी धर्माध्यक्ष या शासक द्वारा 'धर्म विरोधी' घोषित किए जाकर जेलखानों में सड़ने की भी पूरी संभावना थी, पर कोलंबस ने इन सब खतरों को उठाते हुए अपनी खोज का कार्य जारी रखा और अपनी जान झोंककर एक नई दुनिया का पता लगा दिया। यह उसकी कोई छोटी महानता न थी।

कोलंबस के मार्ग में सबसे पहली कठिनाई तो यह थी कि उस समय इस प्रकार का कार्य जनता या किसी साधन संपन्न व्यक्ति द्वारा किया जा सकना संभव न था। उस समय के शासक सर्वशक्तिमान होते थे और प्रजा को अपने दास के समान समझते थे। इसलिए उनकी मंजूरी और आदेश प्राप्त किए बिना कोई बड़ा काम नहीं किया जा सकता था। दूसरी बात यह भी थी कि जब तक कोई राज्य रक्षा का वचन न दे और आवश्यकता पड़ने पर सैनिक एवं अस्त्र-शस्त्र देने को तैयार न हो, तब तक ऐसे खोज के कार्य में हाथ डालने में सिवाय खतरे के कोई लाभ न था, क्योंकि ऐसे असहाय व्यक्ति से कोई भी राजा, बादशाह या लुटेरे उसकी साधन-सामग्री को छीनकर स्वयं उसकी खोजों के स्वामी बन सकते थे। आरंभ में कोलंबस ने पुर्तगाल के शासक से सहायता की प्रार्थना की और १४ वर्ष तक विभिन्न समुद्री मार्गों की खोज करके कितने ही नक्शे बनाए, विभिन्न स्थानों की स्थिति का पता लगाया और समुद्री यात्रा के संबंध में कितनी ही अन्य आवश्यक बातों को मालूम किया, पर अंत में वहाँ के शासकों की नीयत खराब हो गई। उन्होंने अपने विशेषज्ञों द्वारा निरीक्षण का बहाना करके कोलंबस के नक्शे और गणित के हिसाब-किताब के कागजात माँग लिए और फिर उन सबको जब्त करके उसे एक प्रकार से नजरकैद कर दिया।

इस प्रकार पुर्तगाल से निराश होकर वह बड़ी कठिनाई से जान बचाकर स्पेन पहुँचा। वहाँ सौभाग्य से उसकी भेंट एक विद्या-व्यसनी महंत से हो गई, जिसका स्पेन की सम्राज्ञी पर बड़ा प्रभाव था। उसी की सहायता से वह राज-दरबार में पहुँचा। पर सदा की भाँति यहाँ भी सबसे पहले उसका पाला ऐसे पादरियों से पड़ा, जो इस प्रकार की समस्त नवीनताओं के विरोधी थे और चाहते थे कि लोग सदा पुराने अंधविश्वासों तथा धार्मिक बंधनों में पड़े रहें। कोलंबस ने अपनी योजना बड़े विनीत भावों उनके सम्मुख रखी, पर वे इस बात को किसी तरह मानने को तैयार ही नहीं हुए कि यह पृथ्वी गोल है और इस पर एक ही दिशा में चलकर उसी स्थान पर पहुँचा जा सकता है। उनकी सम्मति में यह बात 'बाइबिल' के वर्णन से विरुद्ध थी और इस कारण अधार्मिक थी। इसलिए उन्होंने फैसला किया कि कोलंबस की बातें सारहीन ही नहीं हैं, वरन एक प्रकार यह उसकी जालसाजी है। उसका एकमात्र उद्देश्य राज्य के खजाने से कुछ धन उड़ा लेना है। इस विदेशी को तुरंत स्पेन छोड़कर चला जाना चाहिए। आज हमको उन विद्वान नामधारियों का उक्त निर्णय उपहासास्पद जान पड़ता है, पर क्या हमारे यहाँ के 'पंडित' अभी तक पृथ्वी को चक्की के पाट की तरह चपटा और शेषनाग के फन के ऊपर स्थित नहीं बतलाते थे? पादरियों ने तो धन के अपव्यय के नाम पर कोलंबस की समुद्री यात्रा का विरोध किया था, पर हमारे 'धर्माध्यक्षों' ने तो समुद्र यात्रा को एक महान पाप घोषित करके लोगों को कूपमंडूक बने रहने की पहले से ही पूरी व्यवस्था कर रखी थी।

कोलंबस ने फिर भी हिम्मत नहीं हारी और अपने कुछ सहायकों की चेष्टा से सम्राज्ञी से भेंट करके उसे अपनी योजनाओं में सहयोग देने को राजी कर लिया। इस यात्रा के लिए जहाजों की व्यवस्था करना भी अत्यंत कठिन था, क्योंकि कोई भी मल्लाह अथाह और अज्ञात समुद्र में प्रवेश करके जान देने को तैयार न था। सरकारी दंड की धमकी दिए जाने पर वे गए भी तो रास्ते में उन्होंने बार-बार कोलंबस के प्रति विद्रोह किया और उसे मारने की कोशिश की, पर वह उन सबसे बड़े ढंग से काम लेकर कई महीनों की यात्रा करके अमेरिका पहुँच गया।

यद्यपि कोलंबस के अन्य सब साथी धन कमाने और अमेरिका से बहुत सा सोना बटोर लाने के भाव से ही वहाँ पहुँचे थे, पर कोलंबस ने अपना ज्यादा ध्यान नए देश की भौगोलिक जानकारी प्राप्त करने में ही लगाया। उसने तीन-चार प्रदेशों की यात्रा करके वहाँ के मार्ग की पूरी तरह जानकारी प्राप्त कर ली। उसके आधार पर स्पेन के तथा अन्य देशों के भी बड़े लोग दौड़कर अमेरिका पहुँच गए और जिससे जितना बना उतने भूभाग का स्वामी बनकर बैठ गया। बेचारे कोलंबस को उस समय भी किसी ने नहीं पूछा, क्योंकि उसकी सहायिका सम्राज्ञी इसावेला का देहांत हो गया था और उसके बाद के शासकों ने उसका एहसान मानना अथवा उसके साथ किए गए वायदों का पालन करना अनावश्यक समझा। दूसरों के परिश्रम के आधार पर ऐश-आराम करने वाले राजाओं तथा पूँजीपतियों की सदा से यह नीति रही है।

यद्यपि शासकों और बड़े लोगों ने कोलंबस को अनेक बार धोखा दिया और उसकी खोज के फलों से उसे वंचित करके स्वयं लाभ उठाते रहे, तो भी उसने अपने उद्देश्य का त्याग नहीं किया। वह जानता था कि उसका परिश्रम एक दिन उसके जैसे सामान्य मनुष्यों के लिए भी कल्याणकारी सिद्ध होगा। इसलिए जब समुद्री यात्राओं में कष्ट सहन करते-करते उसका शरीर बिलकुल जर्जर हो गया और वह एक सामान्य व्यक्ति की तरह मृत्यु शय्या पर पड़ा अंतिम क्षण की प्रतीक्षा कर रहा था, तब भी उसने अपने पुत्र डीगो से यही कहा— “बेटा, मैं कोई महापुरुष नहीं हूँ। मैंने तो केवल एक द्वार खोला है जिससे दूसरे लोग उससे प्रवेश कर सकें। देखो, आकाश में बहुत ऊँचाई पर एक प्रकाश-रेखा दीख रही है। अब शीघ्र ही सूर्य का प्रकाश हमारे लिए उदय होगा।” यह कहते-कहते उसकी आत्मा सचमुच उस लोक में पहुँच गई, जहाँ पृथ्वी के अशांत और संघर्षपूर्ण जीवन के पश्चात ऐसे परोपकारी व्यक्तियों को भगवान की शीतल छाया प्राप्त होती है।



लगन, साहस और निष्ठा से भविष्य बनाने वाले लाला श्रीराम

वर्षों पुरानी बात है। लायलपुर कॉटन मिल्स के गेट पर एक नाटे कद का दुबला-पतला प्रौढ़ व्यक्ति आ खड़ा हुआ। गेट के अंदर सफाईकर्मी सफाई कर रहा था। उसने देखा तो सोचा शायद यह व्यक्ति अंदर घुसने वाला है। पता नहीं कौन है? वह कड़ककर बोल उठा— “भले आदमी कहाँ घुसा जा रहा है? देखता नहीं सफाई हो रही है।”

प्रौढ़ व्यक्ति धीरे-धीरे मुड़कर चला गया। उस दिन मिल का मालिक निरीक्षण के लिए आने वाला था। सफाईकर्मी सफाई कर चुका और थोड़ा सुस्ताने लगा कि उसे शोर सुनाई दिया—‘लाला जी आ गए, लाला जी आ गए’—मिल मालिक को मजदूर इसी संबोधन से पुकारा करते थे। उसके बाद गेट पर लालाजी सफेद अचकन और चूड़ीदार पायजामा पहने आते हुए दिखाई दिए। सफाईकर्मी अपनी कोठरी से बाहर निकला, देखा तो सर से पाँव तक काँप उठा। लगा अब लगी—लगाई नौकरी हाथ से जाने वाली है। जिस प्रौढ़ व्यक्ति को कुछ देर पहले उसने गेट पर से भगाया था, वही व्यक्ति लालाजी मिल मालिक थे। उन्हें देखकर सफाईकर्मी को कँपकँपी आने लगी। लाला श्रीराम ने सफाईकर्मी की ओर देखा और थोड़े मुस्कराए। उसे लगा अब आसमान फट पड़ेगा। जल्दी-जल्दी में उसे एक उपाय सूझा और वह लालाजी के चरणों में झुककर माफी माँगने के लिए दौड़ सा उठा।

लाला श्रीराम सफाईकर्मी की मनःस्थिति को भाँप गए। पैरों में झुकने से पहले ही उन्होंने सफाईकर्मी को गले से लगा लिया और बोले—“मैं तुमसे नाराज नहीं हूँ, मेरे बच्चे, बल्कि मैं तो तुमसे खुश हूँ। तुम अपना फर्ज कितनी अच्छी तरह निभाते हो।” कोई और मालिक या अधिकारी होता तो शायद सफाईकर्मी की छुट्टी ही हो जाती, परंतु लाला श्रीराम के हृदय में जो महामानव छिपा बैठा था, उसने सफाईकर्मी को भी सम्मान्य और प्रशंसनीय बना दिया।

जीवट एवं संकल्प शक्ति के धनी पराक्रमी व्यक्तित्व) (९

भारत के औद्योगिक क्षेत्र में लाला श्रीराम अद्वितीय प्रतिभा, उत्कट देशभक्ति और अपूर्व मानवता के प्रतीक माने जाते हैं। यह महान उद्योगपति किसी संपन्न घराने में नहीं एक साधारण से परिवार में जन्मा था। जीविका के प्रचुर साधनों के अभाव में उनकी शिक्षा-दीक्षा भी ज्यादा नहीं हो सकी। मैट्रिक पास कर लेने के बाद उन्हें एक कपड़े की दुकान पर कपड़े नापने और काटने की नौकरी करनी पड़ी। पारिश्रमिक के रूप में उन्हें उस समय २५ रु. प्रतिमास मिलता था। इतने निम्न स्तर से अपने जीवन की शुरुआत कर अस्सी वर्ष के लगभग पहुँचते-पहुँचते ५८ करोड़ रु. की ठोस संपत्ति वाले उद्योग समूह के कुशल संचालक स्वामी बन गए।

लड़कपन या नौजवानी में देखकर कोई उन्हें यह नहीं कह सकता था कि वे जिंदगी में आगे चल कुछ कर दिखाएँगे। परंतु उन्होंने जब कुछ करने की ठान ली तो अपनी लगन व निष्ठा के बल पर ऐसा काम कर दिखाया जो दुनिया में गिने-चुने व्यक्तियों ने ही किया हो। २५ रु. मासिक वेतन में से भी वे किरायातसारी करके कुछ बचा लेते थे। इस प्रकार उनके पास बचत की कुछ पूँजी इकट्ठी हो गई और अपने दोस्त की साझीदारी में एक स्टेशनरी की दुकान खोल दी, लेकिन कुछ दिनों के बाद ही उन्हें दुकान बंद कर देनी पड़ी। इसमें उन्हें कोई सफलता नहीं मिली।

वहाँ से निराश होकर वे अपने बहनोई के साथ अलवर आ गए। एक जोनिंग फैक्टरी में काम मिल गया। लाला श्रीराम को इतने से ही संतोष नहीं हुआ। उनके हृदय में बसने वाली महत्वाकांक्षा उन्हें इधर से उधर भटकाती रही। वे दिल्ली चले आए और राय साहब बूटासिंह की फर्म में मुंशी का काम करने लगे। अपनी दूरदर्शिता, सूझबूझ और कार्यकुशलता से लालाजी ने राय साहब को बड़ा प्रभावित किया। राय साहब की सिफारिश पर वे दिल्ली क्लॉथ मिल के सेक्रेटरी की मारफत डी. सी. एम. में अतिरिक्त सेक्रेटरी मनोनीत किए गए।

इसके बाद वे एक के बाद एक सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ते गए। उसी दौरान देश में स्वतंत्रता की माँग उठने लगी। लालाजी का

विश्वास था कि अँगरेजों को आखिर भारत छोड़कर जाना ही होगा। उसके बाद देश की आर्थिक स्थिति क्या होगी, यह अकल्पनीय है। इसलिए स्वदेशी उद्योग-धंधों के विकास की अनिवार्य आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए उन्होंने राष्ट्र की सामाजिक और आर्थिक उन्नति में योगदान देने का संकल्प लिया। यह उनकी दूरदर्शिता का ही परिचायक है। डी. सी. एम. में काम करते समय उन्होंने सर्वप्रथम इंजीनियरिंग विभाग में बोल्ट और स्कू बनाने का काम सीखा। उस समय उनकी लगन व निष्ठा देखने योग्य थी। लालाजी ने उस समय की स्मृतियों का जिक्र करते हुए कई बार कहा है कि एक साधारण मजदूर कठोर परिश्रम से इंजीनियर बन सकता है। मैंने इस सिद्धांत पर अमल किया। इसी कारण मैं आज इस स्थिति तक पहुँचा हूँ।

डी. सी. एम. के सेक्रेटरी पद पर रहते हुए उन्होंने मिल के अनेक विभागों का काम देखा और अपनी कर्तव्यनिष्ठा के बल पर वहाँ सुव्यवस्था कायम की। जिनकी हालत खराब थी लालाजी के प्रयासों से वे ही उन्नत और लाभदायी बन गए। वहाँ के कारीगरों में कारखाने के प्रति आत्मीयता का भाव पैदा कर ऐच्छिक सहयोग के बल पर उन्होंने तीन साल के अंदर-अंदर उत्पादन को बढ़ाया। अब वे अतिरिक्त सेक्रेटरी के स्थान पर मिल के सर्वेसर्वा से बन गए। इसके बाद दिल्ली क्लॉथ मिल और श्रीराम उद्योग समूह ने जो आश्चर्यजनक प्रगति की उसका श्रेय लालाजी को ही है।

व्यापार जगत में एक बहुत बड़ी भ्रांत धारणा यह फैली हुई है कि छल-कपट और बेईमानी के बल पर ही इस क्षेत्र में सफलता पाई जा सकती है, परंतु लालाजी का विश्वास और अनुभव इसके सर्वथा विपरीत ही जाता है। उन्होंने दो महायुद्ध देखे और तत्कालीन व्यापार क्षेत्र में बेईमानी को सफलता का मूल आधार माना जाता था। ऐसे समय में लाला श्रीराम ने जो आदर्श प्रतिष्ठापित किए, वे उनके व्यक्तित्व की महानता में चार चाँद लगाते हैं। कुशलतापूर्वक घूस देना और अपना काम करवा लेना बुद्धिमानी समझा जाता है, आज भी और उस समय भी। एक बार रेलवे अधिकारियों ने घूस लेने के लिए उनका

माल रोक दिया और अपनी दस्तूरी माँग की। लालाजी ने परिस्थितियों से समझौता करना सीखा ही नहीं था। इसलिए वे हानि उठाकर भी उस अनुचित दबाव के खिलाफ संघर्ष करते रहे। जिस प्रकार वह किसी सरकारी अधिकारी को अवैध रूप से खुश नहीं कर सकते थे, उसी प्रकार नियत टैक्स को भी एक पाई का हेर-फेर किए बिना सरकार को भुगतान करते।

सन् १९४२ की बात है। अँगरेजो भारत छोड़ो आंदोलन चल रहा था। ब्रिटिश सरकार ने इनकम टैक्स की दरें काफी बढ़ा दीं जिससे कंपनी को सत्तर-अस्सी लाख रुपये अधिक देना आवश्यक हो गया। मिल के ही कुछ अफसर लोग लालाजी के पास पहुँचे और सलाह दी कि यह बढ़ा हुआ कर अदा न किया जाए। लालाजी ने स्पष्ट कह दिया—“इस टैक्स को बचाने के लिए कंपनी के हिसाब में गड़बड़ करने की बेईमानी मैं नहीं कर सकता। मेरी स्थिति तो यह है कि मेरे बेटे को फाँसी लगती हो और मेरे झूठ बोलने से उसके बच जाने की गुंजाइश हो तो भी मैं झूठ नहीं बोलूँगा।”

उनके लिए देशभक्ति का एक ही अर्थ था—देश का औद्योगीकरण और वैज्ञानिकीकरण। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वे अपने आदर्शों के प्रति पूरी तरह से ईमानदार रहे। इसी ऊँचे लक्ष्य के प्रति आस्थावान बने रहने के कारण उन्होंने अपने जीवन का उद्देश्य रुपया कमाना कभी नहीं माना। वे स्वयं भी आठ प्रतिशत से अधिक मुनाफा नहीं कमाते और अपने साथियों को भी इसी प्रकार की सलाह देते। उच्च नैतिकता और उत्कृष्ट चरित्र के लगभग सभी गुण उनमें मौजूद थे।

अट्ठावन करोड़ के उद्योग समूह का संचालक अपने कार्यकारी जीवन में कितना व्यस्त रहता होगा? इस व्यस्त जीवन में भी वे उपासना नियमित रूप से निश्चित समय पर करने के पाबंद थे।

७९ वर्ष की उम्र में १२ जनवरी, १९६३ को उनका देहांत हो गया। जिसने जीवन भर करोड़ों रुपये की संपत्ति का स्वामित्व भोगा, अंत समय में उनके पास शायद ही कुछ बचा हो, क्योंकि इसके पहले ही वे अपना सब कुछ परोपकारी संस्थाओं को दान कर चुके थे।



पुरुषार्थ और लगन की ज्वलंत प्रतिमा—श्री टी. प्रकाशम

अक्टूबर १९५३ में नए आंध्र राज्य का गठन हुआ। विधानसभा में मंत्रीमंडल का नेतृत्व करने के लिए योग्य और कुशल नेता की आवश्यकता हुई और इसके लिए दल के सदस्यों में तलाश प्रारंभ हुई। एक से एक योग्य और कुशल व्यक्ति थे, परंतु दल के अधिकांश सदस्यों ने ८४ वर्ष के एक वृद्ध अशक्त व्यक्ति में अपना विश्वास व्यक्त किया और उन्हें ही मुख्यमंत्री बनाया गया। पुनर्गठित आंध्र प्रदेश के प्रथम मुख्यमंत्री थे—प्रांत के ही एक उत्साही और देशभक्त नेता टगूटरी प्रकाशम।

यद्यपि वे काफी वृद्ध थे फिर भी उन्होंने सिद्ध कर दिया कि कार्य और श्रमशक्ति का वार्द्धक्य से कोई संबंध नहीं है। टी. प्रकाशम प्रतिदिन नियमित रूप से समय पर विधानसभा में आते। किसी मेहनती युवक से कम नहीं अधिक ही काम करते। यही नहीं नब्बे वर्ष की आयु में प्रांत भर का दौरा भी किया और लोगों की समस्याओं का अध्ययन कर उन्हें दूर करने के लिए सफलतापूर्वक विकास योजनाएँ चलाईं। इस कर्मठ और परिश्रमी विभूति में अपना विश्वास व्यक्त कर प्रांत की जनता तथा विधायकों ने निश्चित ही कोई भूल नहीं की। श्रमशील व्यक्ति हर किसी का विश्वस्त बनता ही है।

टी. प्रकाशम का जीवन आरंभ से ही पुरुषार्थ और संघर्ष की घटनाओं से शुरू होता है। उनका जन्म आंध्र राज्य के कनपती (गुंटूर जिला) गाँव में रहने वाले एक निर्धन परिवार में २३ अगस्त १८६९ को हुआ। पिता गोपाल कृष्णम कठोर मेहनत और मजदूरी कर भी अपने परिवार की आवश्यकताएँ भलीभाँति पूरी नहीं कर पाते थे। बचपन में ही उन्होंने यह जान लिया था कि अभाव और गरीबी क्या चीज है? उन्हें इन दोनों बातों का अच्छा अभ्यास भी हो गया था जो

जीवट एवं संकल्प शक्ति के धनी पराक्रमी व्यक्तित्व) (१३

आगे के जीवन में काम आया। अभाव और निर्धनता की परिस्थितियाँ जीवन और जगत के रणक्षेत्र में सफल होने के लिए ईश्वर और प्रकृति द्वारा दिया जाने वाला प्रशिक्षण ही है। यही कारण है कि संसार के अधिकांश महापुरुषों और सफल व्यक्तियों को आरंभ में तथा बाद में भी अभावग्रस्त जीवन जीना पड़ा है। ये परिस्थितियाँ व्यक्तियों में पुरुषार्थ और कर्मशक्ति भी जाग्रत करती हैं, जिनके बल पर वे सामान्य लोगों में रहते हुए भी विशिष्ट स्थान प्राप्त हैं।

ट्यूटरी प्रकाशम अभी बच्चे ही थे कि परिवार को एक और धक्का लगा। उनके पिता का देहांत हो गया। परिवार पहले ही से निर्धन था और अब जीविकोपार्जन करने वाला एकमात्र व्यक्ति भी चल बसा। छोटे-छोटे बच्चे क्या कर सकते थे? उनकी माता ने उस समय अपूर्व साहस का परिचय दिया और जीविका के स्रोत खोजने के लिए बाहर आई। रिश्तेदारों ने पैतृक परंपरा तोड़ने का विरोध किया। उनकी माता ने स्पष्ट कह दिया—“जिन लोगों को परंपरा का मोह है वे मेरे बच्चों की जिम्मेदारी अपने ऊपर क्यों नहीं लेते? अगर कोई सहायता करने को तैयार हो तो मैं काम की तलाश छोड़ दूँ।”

इस उत्तर ने रिश्तेदारों का मुँह बंद कर दिया। लोग अकारण ही विरोध करने के लिए सामने आते हैं। विपत्तिग्रस्त परिजन की सहायता और उसे सहारा देने की बात उन्हें नहीं सूझती। इस प्रकार व्यर्थ ही आपत्ति उठाकर परेशान करने वाले रिश्तेदार हितचिंतक नहीं हो सकते।

उत्साही और परिश्रमी माता को काम मिल गया। उससे होने वाली आय तो अपर्याप्त थी, परंतु अपने बच्चों का भविष्य सुधारने के लिए उनकी शिक्षा के प्रबंध की आवश्यकता अनुभव हुई। आय के स्रोत बढ़ाने के लिए उन्होंने एक छोटा सा होटल भी खोला। इस प्रकार परिवार का निर्वाह भी ठीक प्रकार से होने लगा और बच्चों की शिक्षा भी चलने लगी। टी. प्रकाशम को ऑंगोलु की पाठशाला में भरती करवाया गया।

माँ के स्नेहपूर्ण ममत्व और परिवार की अभावजन्य स्थिति ने प्रकाशम के मन में पढ़ने की लगन पैदा कर दी। माँ को जब भी समय

मिलता अपने बच्चों की शिक्षा-पढ़ाई पर ध्यान देती और बड़े प्यार से कहती-“मेरे प्यारे बच्चो खूब मन लगाकर पढ़ो और घर की गरीबी तथा तंगियों की ओर बिलकुल ध्यान मत दो।” बच्चों को अभाव और निर्धनता में पूर्ण प्यार व स्नेह मिले तो उनके विकास की संभावनाएँ और दृढ़ हो जाती हैं।

टी. प्रकाशम की श्रमनिष्ठा और अध्ययनशीलता से प्रभावित होकर उन्हें अध्यापक भी सहयोग देने लगे। कुछ धनवान और उदार सहपाठियों तथा शिक्षकों ने भी मिलकर अनेकों बार उनकी फीस तथा पुस्तकों का प्रबंध किया। आगे चलकर तो वे स्वयं ही आत्मनिर्भर बन गए थे। अपनी मेहनत के बल पर ही उन्होंने एम. ए. पास कर लिया।

इसके बाद उनकी इच्छा वकालत में बैठने की हुई। उम्र कम होने के कारण वे प्रारंभिक दो वर्षों तक इस परीक्षा में नहीं बैठ सके। दो वर्षों बाद मित्रों की सहायता से वे मद्रास के लॉ कॉलेज में भरती हुए और वकील बन गए। लॉ की डिग्री राजभद्री में उन्होंने प्रैक्टिस आरंभ की और शीघ्र ही उनकी गणना शहर के प्रतिष्ठित तथा सफल वकीलों में होने लगी। वकालत के व्यवसाय में उन्हें अच्छी आमदनी हुई।

टी. प्रकाशम को निर्धनता और अभावों का खूब अनुभव था। वे किन परिस्थितियों में पढ़ सके थे, यह उन्हें अच्छी तरह याद रहा। इस स्मृति ने उनके हृदय में अपने समान दूसरे गरीब परिवार के छात्रों की मदद के लिए प्रेरित किया। वे अच्छी आय के बावजूद भी साधारण जीवन व्यतीत करते और निर्धन छात्रों की समय-समय पर मदद करते रहते। जिन लोगों को अपने अतीत के दिन याद रहते हैं, वे थोड़े भी विचारशील और सहृदय हों तो औरों के प्रति स्वाभाविक ही सेवा-सहायता की भावनाएँ पैदा होती हैं।

टी. प्रकाशम अपने उदार स्वभाव के कारण गरीबों में तथा सफल और बुद्धिमान वकील होने के कारण दूसरे वर्ग के लोगों में खूब विख्यात हुए। इस ख्याति से उन्हें राजभद्री नगरपालिका का चेयरमैन भी बनाया गया। इस पद पर रहकर उन्होंने कई उल्लेखनीय कार्य किए।

सन् १९०३ में वे मित्रों के आग्रह तथा स्वयं की प्रेरणा से कानून के उच्च अध्ययन हेतु इंग्लैंड गए और सन् १९०७ में वहाँ से बैरिस्टर बनकर लौटे। भारत आने के बाद उन्होंने मद्रास में बैरिस्टरी शुरू की। अब उनकी आय और भी बढ़ी।

पंद्रह वर्ष तक इस प्रतिष्ठित व्यवसाय में लगे रहने के बाद वे महात्मा गांधी के संपर्क में आए। गांधीजी के विचारों तथा स्वतंत्रता आंदोलन की गतिविधियों से प्रभावित होकर वे राजनीति के क्षेत्र में उतरे। स्वतंत्रता की विचारधारा का प्रचार करने के लिए उन्होंने एक पत्र भी निकाला जो बहुत लोकप्रिय हुआ। धीरे-धीरे वे राजनीति के रंग में पूरी तरह से रँग गए। देश को आजाद कराना उन्होंने अपना पहला फर्ज माना।

बैरिस्टरी का-अच्छी आय और प्रतिष्ठा का व्यवसाय छोड़कर वे भी स्वतंत्रता सेनानियों की पंक्ति में आ खड़े हुए। टी. प्रकाशम ने देश की-संस्कृति की भलाई और रक्षा के लिए उन सभी आकर्षणों को ठुकरा दिया जिनसे कि वह बँधे हुए थे। जीवन पुनः उसी क्रम का बन गया जिस प्रकार का बैरिस्टर और वकील बनने से पहले था, परंतु अब उन्हें इस स्थिति में दुखी और क्षुब्ध नहीं रहना पड़ा जितना कि वह पहले थे। कष्ट, त्याग और तपस्या का जीवन स्वेच्छा से अपनाने पर अभाव और तंगी इतना परेशान नहीं करती जितना कि गरीबी और निर्धनता। हालांकि दोनों में दशा एक ही जैसी रहती है, परंतु एक स्थिति तो उद्देश्य प्रधान जीवन बनाने के कारण आती और दूसरी निरुद्देश्य तथा नियतिजन्य दशा में आती है।

अपनी संपत्ति और जायदाद से लगाव तोड़कर वे स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय भाग लेने लगे। आततायी और अत्याचारियों से निपटने के लिए अहिंसक तरीका अपनाने पर तो और भी उत्साही, साहसी और वीर बनना पड़ता है। इसीलिए कहा गया है कि अहिंसा कायरों का अस्त्र नहीं है। टी. प्रकाशम ने भी अहिंसक सेना का सैनिक बनकर साहस और वीरता की शक्ति अर्जित की और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए बड़े से बड़े खतरे उठाने में भी पीछे नहीं हटे।

सन् १९२७ में साइमन कमीशन मद्रास आया। इसके विरोध में मद्रास हाईकोर्ट के सामने बड़ा भारी प्रदर्शन किया गया। प्रदर्शनकारियों को तितर-बितर करने को पुलिस ने गोली चलाई और कई व्यक्ति घायल हुए। टी. प्रकाशम पुलिस का घेरा तोड़कर घायलों के पास गए और उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने का प्रयत्न किया। निस्संदेह पुलिस की अपेक्षा इस अहिंसक योद्धा को अधिक मनोबल और साहस से काम लेना पड़ा।

निर्भयता साहस का ही एक अनिवार्य गुण है जो अहिंसा के साथ समान रूप से जुड़ा हुआ है। टी. प्रकाशम ने इस गुण का विकास भी अहिंसा साधक के रूप में किया था और वे अँगरेजी साम्राज्यवाद की खुली आलोचना करने में कभी भी, किंचित भी नहीं हिचकिचाए। मद्रास से जब 'स्वराज्य' दैनिक का प्रकाशन आरंभ हुआ तो उसका संचालन भार टी. प्रकाशम को ही सौंपा गया। उन्होंने इस पत्र को जनता की आवाज का प्रतिनिधि बनाने में कोई कमी नहीं छोड़ी तथा अनेक प्रतिभाओं को भी स्वराज्य के माध्यम से ढूँढ़ निकाला। राष्ट्रीय आंदोलन के लिए निर्भीक एवं उत्साही कार्यकर्ता पैदा करने और जन-भावना को बुलंद करने में इस पत्र ने उनके संचालकत्व में महत्वपूर्ण भाग लिया है। इसके लिए उन्हें सरकार तथा अँगरेज अधिकारियों का कोपभाजन भी बनना पड़ा, परंतु उन्होंने भयभीत होना या घबराना कहाँ सीखा था।

स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने के साथ-साथ उनका ध्यान जनता की समस्याओं पर भी था। अविभक्त मद्रास के प्रथम मंत्रिमंडल में उन्हें माल मंत्री पद पर नियुक्त किया गया तो जमींदारी प्रथा के उन्मूलन हेतु उन्होंने एक विशद प्रतिवेदन दिया। जिसमें जमींदारों की मनमानी और किसान के उचित अधिकारों के हनन का विस्तृत ब्योरा तथा उसके फलस्वरूप होने वाली राष्ट्रीय क्षति की ओर ध्यान आकृष्ट कराया गया था। इस प्रतिवेदन के आधार पर राज्य से जमींदारी प्रथा को समाप्त कर दिया गया। प्रतिवेदन में जानकारी, तथ्य और विवरण बड़े श्रम और सावधानी से एकत्र किए गए थे तथा अधिकांश लोगों के

हितों पर हो रहे कुठाराघात का निकट से अध्ययन किया गया था। इसी का परिणाम था कि जमींदारी का उन्मूलन हो सका। न्याय और औचित्य की प्रतिष्ठापना भी श्रम तथा लगन के बिना नहीं हो सकती। तथ्यपूर्ण जानकारी के लिए टी. प्रकाशम इतना श्रम नहीं करते तो संभव था कि वस्तुस्थिति की ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता।

दूसरे महायुद्ध के पश्चात उन्हें मद्रास का मुख्यमंत्री भी बनाया गया। यहाँ भी वे लोकसेवा तथा अधिकाधिक लोगों के सुख-साधनों हेतु अनथक प्रयत्न करते रहे। उनके मंत्रिमंडल द्वारा चलाई गई महत्वपूर्ण योजनाओं में फिरका विकास योजना की सर्वाधिक चर्चा की जाती है। यह योजना गाँवों के विकास हेतु बनाई गई थी। आजकल शासन द्वारा चलाए जा रहे सामुदायिक विकास कार्यक्रमों का प्रमुख आधार यही है। ग्यारह मास के छोटे से कार्यकाल में उन्होंने फिरका विकास योजना को सफलतापूर्वक चलाया। बाद में उन्होंने मुख्यमंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में भी वे राष्ट्रीय जीवन को उन्नत बनाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। सेवा और लोकनिष्ठा ने उन्हें वृद्धावस्था में भी विश्राम नहीं लेने दिया। उनका स्वप्न था कि सामान्य नागरिक का जीवन उन्नत स्तर का बने। वे शिक्षित, जागरूक, श्रमशील और अनिवार्य आवश्यकताओं के लिए निश्चित हों; इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर उन्होंने मरणपर्यंत लगन और निष्ठा के साथ पुरुषार्थ साधना की।

सन् १९५७ में उन्होंने अपने इस जीवनग्रंथ का इतिवृत्त लिखा और सदा के लिए चले गए। अपना सर्वस्व देश के लिए न्योछावर कर लगनपूर्वक पुरुषार्थ साधना में रत महामानवों में वे सदैव अग्रिम माने जाएँगे।



मानवीय साहस व सहृदयता के प्रतीक — फ्रिड्रिखाफ नेन्सन

“जहाँ मनुष्यों के बीच अनवरत पारस्परिक घर्षण उस समय तक अबाध रूप से चलता रहता है, जब तक वे एक-दूसरे को घिसकर समतल शून्य नहीं बना देते।” नगरों के प्रति यह अभिमत रखने वाले नॉर्वे निवासी फ्रिड्रिखाफ नेन्सन का व्यक्तित्व-कर्तृत्व विश्व के इतिहास में अविस्मरणीय बन चुका है। उन्नीसवीं शताब्दी में उत्तरी ध्रुव के साहसिक अभियान के माध्यम से उन्होंने अपनी कीर्तिपताका फहराकर मानवीय पराक्रम का एक नवीन अध्याय खोला। बीसवीं शताब्दी के प्रथम तीन दशकों में उन्होंने लाखों शरणार्थियों के भोजन, आवास, सुरक्षा एवं जीवन की नवीन आशाओं की सुरसरि बहाकर अनुपम ख्याति अर्जित की।

नेन्सन का बाह्य व्यक्तित्व जितना आकर्षक था अंतर में उतना ही निष्कलुष, संवेदनशील तथा अदम्य साहस का आत्मिक प्रकाश ज्योतिर्मान था। शारीरिक दृष्टि से उनकी छह फुट दो इंच ऊँची काया-सागर सी नीलिमा लिए चमकीले नयन युगल और सिंह की सी शक्ति समन्वित उनका यह स्वरूप प्राचीन देवताओं की याद दिलाता था। अंतःकरण में वैसा ही देवत्व भी निवास करता था।

उन्हें प्रकृति से अनूठा लगाव था। नगरों से घृणा थी, जहाँ मनुष्य अपनी जननी प्रकृति का साहचर्य नहीं पाता। अपने नैसर्गिक स्वरूप को भूलकर कृत्रिम आवरण ओढ़कर जीने को विवश हो जाता है। महान विचारक थोरो की भाँति उन्हें नियति नदी के हर क्रिया-कलाप से जो रसानुभूति होती थी, वह अवर्णनीय होती थी। साथ ही साथ उसके स्रष्टा के प्रति श्रद्धा और भक्ति भी प्रगाढ़ होती जाती थी।

उनके पिता ओस्लो के धनीमानी वकील थे। उनका बचपन नार्डमार्का के सुंदरतम वन प्रदेश के एक फॉर्म हाउस पर व्यतीत हुआ। बाल्यकाल से ही प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति उनके मन में प्रबल आकर्षण था। प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा के साथ-साथ वन-संपदाओं से लदे गिरि-

शिखरों पर उनके अबाध विचरण का क्रम भी चलता रहा। इस परिवेश से उन्होंने बहुत कुछ सीखा था। इसी प्राकृतिक परिवेश ने उन्हें यह सीख दी-“अधिक कमाने की अपेक्षा अपनी आवश्यकताओं को कम करना अधिक श्रेयस्कर है। बचे हुए समय का सदुपयोग दूसरों के हित में करना चाहिए।”

प्रकृति उनकी जिज्ञासाओं की-और भी अधिक जानने की प्रवृत्ति की तृप्ति का माध्यम भी थी। वनस्पतियों तथा जीव-जंतुओं के बारे में उनका ज्ञान भंडार बहुत विस्तृत हो चुका था। जिज्ञासा ने उन्हें महान जीवशास्त्री व सागरशास्त्री बना दिया। बर्गेन में जब वे पी-एच. डी. कर रहे थे, तब उनके मन में उत्तरी अंध महासागर की जलवायु संबंधी जानकारी प्राप्त करने की इच्छा जाग्रत हुई। यदि ऐसा हो सका तो उन लाखों नागरिकों व जलयात्रियों का महान हित हो सकेगा जो महासागर से यात्रा करते हैं। यह जानकारी पाने के लिए आवश्यक था कि वे ग्रीनलैंड के मध्यवर्ती प्रदेश में रहें और रात-दिन एक करके जानकारीयाँ जुटाएँ। यह बहुत ही साहस एवं जोखिम भरा कार्य था। तब तक ग्रीनलैंड के मध्यवर्ती भाग में कोई पहुँच नहीं सका। हिम के इस अनंत साम्राज्य में जाने तथा रहने की कल्पना ही भयंकर थी।

नेन्सन ने ग्रीनलैंड को पार करने की घोषणा कर दी। उनका यह निश्चय मौत के मुँह में जाने जैसा ही था। अब तक ग्रीनलैंड की जानकारी पाने के लिए जो भी व्यक्ति गए थे, वे सब तटवर्ती प्रदेशों से ही निराश होकर लौट आए थे। वहाँ की भयंकर शीत, अनजाना जनशून्य प्रदेश, बरफीली आँधियाँ तथा आधी जमी हुई झीलें पग-पग पर मृत्यु का संदेश लेकर आती थीं। नेन्सन के इस निश्चय का उनके परिवार वालों ने, मित्रों-परिजनों ने प्रबल विरोध किया। उनके इस विरोध का उनके पास एक ही उत्तर था-“जो पैदा होता वह निश्चित रूप से एक न एक दिन मृत्यु का ग्रास अवश्य बनता है फिर ऐसे कार्य को करने में प्राण जाते हैं जिससे कितने ही लोगों का हित होने की संभावना है तो मृत्यु सौभाग्य का सूचक ही होगी।”

उनकी इस साहसिक घोषणा का चमत्कारी प्रभाव डेनमार्क के एक धनी व्यापारी पर पड़ा। उसने अभियान का पूरा व्यय वहन करने

का दायित्व लिया। उन्हें तीन साहसी साथी भी मिल गए। उन्होंने आवश्यक सामग्री एकत्रित की और प्रस्थान के लिए तत्पर हो गए। सन् १८८८ के ग्रीष्मकाल में वे एक जहाज के द्वारा ग्रीनलैंड के भयंकर तट पर उतरे। पग-पग पर कठिनाइयों, हिम-चक्रवातों और भयंकर शीत से जूझते हुए लगभग छह महीनों में उन्होंने पूरे ग्रीनलैंड को पार कर २८ वर्ष की आयु में ही विश्व स्तर पर ख्याति प्राप्त कर ली।

नॉर्वे लौटने पर उन्होंने अपनी जानकारीयों व वैज्ञानिक तथ्यों को प्रकाशित किया जिससे सारा विश्व चमत्कृत हो उठा। इन जानकारीयों के आधार पर उत्तरी अंध महासागर की जलवायु संबंधी महत्वपूर्ण निर्देश दिए जा सकने संभव हुए।

इस साहसिक अभियान ने उनके आत्मविश्वास को और भी परिपुष्ट कर दिया था। उनका अगला प्रयास उत्तरी ध्रुव महासागर तथा आर्कटिक वृत्त पर पहुँचने के लिए होने वाला था। यह महासागर वर्ष में नौ महीने बरफ से जमा रहता है। इस कारण जहाजों द्वारा इस पर यात्रा संभव नहीं थी। नेन्सन ने जल जहाज द्वारा ही इसे पार करने व ध्रुवव्रत तक पहुँचने का निश्चय किया। उन्होंने अपनी बुद्धि से मजबूत लकड़ियों का ऐसा जहाज बनवाया जो पानी के जमने पर उसमें फँसता नहीं वरन ऊपर ही उठता चला जाता। उसका आकार गोल गेंद जैसा बनाया गया था। इस जहाज का नामकरण उनकी पत्नी ने 'फॉर्म' किया था।

४०० टन भार के इस जलयान पर सन् १८९३ में बारह नाविकों तथा वैज्ञानिकों के दल के साथ वे वेरिंग जल मार्ग से चल पड़े। यह दल इस अनजान क्षेत्र के तापक्रम, जल, तल व अन्य जानकारीयों को एकत्रित करता हुआ आगे बढ़ा। एक वर्ष की मंद यात्रा के पश्चात वे १८९ मील की यात्रा भर कर पाए थे। इस अनुपात से वे साढ़े चार वर्ष में उत्तरी ध्रुव का चक्कर लगाते हुए पुनः नॉर्वे लौट सकते थे।

लंबी साहसिक यात्रा के पश्चात उनका दल ८ अप्रैल, १८९५ को उत्तरी ध्रुव, ८६ अक्षांश पर पहुँचा। वहाँ उन्होंने नॉर्वे का ध्वज फहराया। यहाँ तक कोई खोजी नहीं पहुँच सका था। अब ग्रीष्मकाल

आरंभ हो चुका था। बरफ पिघलने लगी थी। यह बरफ पिघलना जमी रहने की अपेक्षा और भी जोखिम उत्पन्न कर देता है। एक बार तो उनके कुछ साथी दस कुत्तों के साथ डूबने ही वाले थे। यह नेन्सन का ही साहस था कि उनकी प्राण-रक्षा संभव हो सकी थी। अपनी इस यात्रा से वह अपने सभी साथियों सहित अगस्त, १८९६ को सकुशल विजय का सेहरा सिर पर बाँधे नाँव के तट पर उतरे। साहस का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत कर वे विश्व के अनजाने प्रदेशों की बहुमूल्य जानकारी का भंडार विश्व नागरिकों के लिए अपने साथ लाए थे। नेन्सन का नाम उन पराक्रमियों में शीर्षस्थ माना गया जिन्होंने अनजाने प्रदेशों से दुनिया को परिचित कराने के लिए अपने प्राणों को दाँव पर रखा था। वह जहाँ भी गए उनका हार्दिक स्वागत हुआ, शुभ कामनाएँ मिली।

उनको अभी बहुत से साहसिक अभियान संपन्न करने थे। सन् १९०५ में बढ़ते हुए राष्ट्रवाद ने ९० वर्ष से चले आ रहे स्वीडन व नाँव के संगठन को तोड़कर रख दिया। नेन्सन नाँव के स्वतंत्रता संग्राम के नेता बनकर नए रूप में विश्व के सामने आए। स्वीडन के पास सेना की ६०,०००, इकाइयाँ थीं जबकि नाँव के पास केवल ४,००० शक्ति का अनुपात १५ व १ का था। यों देखा जाए तो ऐसी स्थिति में अपनी स्वतंत्र प्रभुसत्ता की माँग एक पागलपन ही था, किंतु उनका विश्वास था कि जहाँ चाह होती है, वहाँ कोई न कोई राह निकल ही आती है।

‘बड़ी मछली छोटी को निगले’ का पाशविक नियम समाज में भी चल रहा है, किंतु यह चलता तभी तक है जब जनता जागी हुई न हो—उनका ध्यान उस दिशा में आकृष्ट नहीं किया गया हो। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी यह चल जाती है, पर उसी स्थिति में जबकि अन्य राष्ट्रों को उस बात से अनभिज्ञ ही रखा जाए। उन्होंने कोपनहेगन तथा लंदन की यात्रा की। वहाँ के राजनीतिज्ञों, पत्रकारों तथा अन्य प्रबुद्ध वर्गों के आगे नाँववासियों की समस्या रखी। परिणाम आशाजनक ही निकला। डेनमार्क तथा अन्य देशों की मध्यस्थता के कारण शांतिपूर्ण ढंग से स्वीडन ने नाँव को एक पृथक राष्ट्र की मान्यता दे दी। उनकी इस सफलता में

उनकी विश्व स्तर की ख्याति का बहुत हाथ रहा। विदेशी लोग नॉर्वे के बारे में उतना नहीं जानते थे जितना नेन्सन के विषय में।

नॉर्वे को प्रभुसत्ता संपन्न राष्ट्र बनाकर वे अपनी वैज्ञानिक शोधों में लग गए। उनसे जनता ने राजनेता बनने का आग्रह किया पर वे अपनी देशभक्ति का मूल्य पद के रूप में पाना नहीं चाहते थे। वे कोणधारी वनों की सुरम्य स्थली में बने अपने घर पर ही रहने लगे, किंतु वे अधिक दिनों वहाँ रह नहीं सके। प्रथम विश्वयुद्ध के समय नॉर्वे की लड़खड़ाती स्थिति को सुधारने के लिए उन्हें फिर विदेश यात्रा पर जाना पड़ा।

उन दिनों नॉर्वे की आयात-निर्यात स्थिति बड़ी डाँवाडोल हो गई। आर्थिक तंत्र लगभग दरक चुका था। नेन्सन ने इंग्लैंड व अमेरिका आदि देशों की यात्रा करके इन देशों से कई व्यापारिक अनुबंध करके नॉर्वेवासियों की खाद्यान्नादि समस्याओं का समुचित समाधान किया।

प्रथम विश्वयुद्ध के भयंकर परिणामों को देखते हुए वार्सेल्ज में हुई अंतर्राष्ट्रीय वार्ता में लीग ऑफ नेशन्स की स्थापना हुई। इस 'लीग ऑफ नेशन्स' के सामने सबसे बड़ी समस्या साइबेरिया में बंदी बनाए गए लाखों युद्धबंदियों को वापस लौटाने की थी। रूस इसके लिए तैयार नहीं था। इस भार को लीग ने नेन्सन ने सुदृढ़ कंधों पर लादा।

नेन्सन मास्को गए। रूस के विदेश मंत्री चिचेरिन ने लीग ऑफ नेशन्स के प्रतिनिधि से वार्ता करने से इनकार कर दिया। नेन्सन ने बड़े धैर्य से कहा—“कोई बात नहीं मुझे लीग ऑफ नेशन्स का नहीं विश्व के अन्य देशों का प्रतिनिधि मानकर ही वार्ता कर लीजिए।” चिचेरिन ने बंदियों के लिए यातायात की सुविधाएँ नहीं होने की बात कही। उसके उत्तर में नेन्सन ने उनके सामने उनके यातायात का विशद प्रारूप रख दिया। अंत में चिचेरिन को नेन्सन की बात मानकर ४,२७,००० युद्धबंदियों को रिहा करना पड़ा।

इस महत्वपूर्ण कार्य को संपादित करने के बाद नेन्सन ने एक बार ओस्लो विश्वविद्यालय में समुद्रशास्त्र का प्राध्यापक बनकर शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करने का प्रयास किया। थोड़े ही दिनों बाद उन्हें लीग ऑफ नेशन्स के आग्रह पर लीग के शरणार्थी उच्चायुक्त बनकर रूसी

शरणार्थियों के पुनर्वास की गंभीर समस्या से जूझना पड़ा। इन शरणार्थियों के पास कोई पारपत्र नहीं थे। उन्हें नेन्सन ने स्वयं लीग के उच्चायुक्त के रूप में लिखित प्रमाणपत्र देकर पारपत्र की समस्या का हल किया। एक व्यक्ति के दिए इस प्रमाणपत्र का पूरे देशों ने सम्मान दिया। आज भी हजारों व्यक्ति उनके दिए इस प्रमाणपत्र का प्रयोग कर रहे हैं।

रूसी शरणार्थियों की समस्या से अभी मुक्त नहीं हुए थे कि टर्की-यूनान युद्ध-पीड़ितों की समस्या उठ खड़ी हुई। उन्होंने टर्की के सहानुभूतिहीन शासन से यूनानियों व अन्य यूरोप देशीय टर्कीवासियों को अपने मूल देश में स्थानांतरित करना ही उचित समझा और उन्हें स्थानांतरित करने के लिए हजार तरह की जोड़-तोड़ की।

अब नेन्सन साठ वर्ष के हो चले थे। सन् १९२२ में रूस में भयंकर अकाल पड़ा। लोग पेड़ों की पत्तियाँ, छाल और यहाँ तक कि मृत मनुष्यों का मांस भी खाने लगे थे। नेन्सन का संवेदनशील हृदय मानवता की इस दुर्दशा पर रो पड़ा। रूस द्वारा किए अपमान को भुलाकर उन्होंने देश-देश जाकर इन दुर्भिक्ष-पीड़ितों के लिए झोली फैलाई। नेन्सन के प्रयास व अनुरोध से यूरोप व अमेरिका के देशों से भरसक सहायता मिली। उनके अपने व्यक्तिगत प्रयास से लाखों लोगों की भोजन व्यवस्था हुई। 'हर्बर्ट हूक्स अमेरिकन रिलीफ एडमिनिस्ट्रेशन' ने अधिकांश दुर्भिक्ष-पीड़ितों को भूखों मरने से बचाया।

सन् १९२२ में उन्हें नोबुल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इस विशाल धनराशि को उन्होंने रूस के दुर्भिक्ष-पीड़ितों के लिए दान दे दिया। उन्हें जो कुछ इस प्रकृति, परमात्मा व समाज से मिला था उस संपदा का एक-एक कण वे विश्व मानव की सेवा में समर्पित कर अपने नाम के साथ एक ऐसी प्रेरणा जोड़ गए हैं जो भुलाए नहीं भूलती।



अनूठे संकल्प बल का परिचय

देने वाले जनरल रोमेल

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय की घटना है। अप्रैल १९४४ की यही कोई १६-१७ तारीख रही होगी उस दिन। विख्यात जर्मन सेनापति रोमेल मोटर में बैठकर कहीं जा रहा था। उसी समय जर्मनी के शत्रु राष्ट्रों के विमान ने उसी सड़क पर भीषण बमबारी की जहाँ से उसकी मोटर गुजर रही थी। वह उस बमबारी का शिकार हो गया। जब उसे अचेत अवस्था में मिलिटरी हॉस्पिटल लाया गया तो डॉक्टरों ने उसकी शरीर परीक्षा करके जो बात कही, वह सुनने वालों को कँपा गई, “कपाल की हड्डी तीन जगह से टूट चुकी है। ऐसी स्थिति में बचने की कोई उम्मीद नहीं है। हमारा काम प्रयास करना है सो कर रहे हैं।”

जिसने यह बात सुनी उसी को लगा कि जर्मनी का यह विख्यात सेनापति मर चुका है। अब तो उसकी रस्मी मौत बाकी है, किंतु डॉक्टरों को यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि उसकी दशा बड़ी तेजी से सुधरने लगी है। यह रोमेल की असाधारण जीवनेच्छा का ही परिणाम था कि वह थोड़े ही दिनों में स्वस्थ हो गया। संकल्पों में इतना बल होता है कि वे मृत्यु को भी पीछे धकेल देते हैं। रोमेल एक ऐसा ही उदाहरण है।

संकल्प शक्ति के ऐसे ही चमत्कार उसके द्वारा युद्धक्षेत्र में भी दिखाए गए थे। सन् १९४१ के फरवरी माह में अफ्रीका में अँगरेजों की स्थिति अत्यंत सुदृढ़ थी। इतालवी सैनिकों से संख्या में बहुत कम होते हुए भी उन्होंने इतालवी सेनाओं को बुरी तरह हरा दिया था। दो ही महीनों में अँगरेजी सेनाओं ने इतालवी सेनाओं को न केवल ५०० मील पीछे धकेल दिया था, बल्कि उनके १,३०,००० सैनिकों को बंदी बना लिया था, ब्रिटिश सेनाओं ने उनसे ४०० टैंक, १,३०० तोपें और काफी मात्रा में युद्ध सामग्री भी छीन ली थी, जबकि अँगरेजों के केवल ५०० सैनिक मारे गए थे और मात्र १,४०० घायल हुए थे।

जीवट एवं संकल्प शक्ति के धनी पराक्रमी व्यक्तित्व) (२५

उत्तरी अफ्रीका में अपने पक्ष को इस प्रकार हारते देखकर जर्मनी के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वह वहाँ कोई सेना भेजकर अँगरेजों के प्रभुत्व को समाप्त करे। मार्च के प्रथम सप्ताह में जनरल रोमेल के नेतृत्व में ५वाँ जर्मन डिवीजन ट्रिपोली भेजा गया। सैनिकों को तुरंत विमानों द्वारा भेजा गया सामान धीरे-धीरे जहाजों से आया। थोड़े ही समय बाद शक्तिशाली १५वाँ पेंजर डिवीजन भी उत्तरी अफ्रीका पहुँच गया।

जनरल रोमेल को यही आदेश मिला था कि वह जब तक पंद्रहवाँ पेंजर डिवीजन उसके पास नहीं पहुँचे, तब तक वह ट्रिपोली से आगे नहीं बढ़े। अँगरेजी सेना के आक्रमण को रोकता भर रहे। न तो अँगरेजी सेनाओं को ही इस बात की आशंका थी कि वह मई के पहले ही उन पर चढ़ बैठेगा और न जर्मनों को ही यह विश्वास था कि वह पंद्रहवें पेंजर डिवीजन के पहुँचने से पहले ही अपने जौहर दिखा देगा। लेकिन रोमेल पूरा अनुभवी और होशियार जनरल था, गजब की संकल्प शक्ति वाला। उसने पंद्रहवें पेंजर डिवीजन का इंतजार किए बिना ही अपने एक डिवीजन और थोड़ी सी इतालवी सेना लेकर ३१ मार्च से पहले ही ५०० मील तक बढ़ आई थकी-थकाई क्षत-विक्षत अँगरेजी सेना पर आक्रमण कर दिया। दो महीने में अँगरेजों ने जितना प्रदेश इतालवी सेनाओं से छीना था। वह रोमेल ने केवल ११ दिन में छीन लिया। ११ दिन में अँगरेजी सेना को ५०० मील पीछे हटा देने की यह घटना अद्भुत व चमत्कार जैसी थी।

ब्रिटिश सैनिक और अफसर जिस रोमेल के बारे में यह मानते थे कि उसे कोई दैवी शक्ति मिली हुई है, वह एक अध्यापक का पुत्र था। उसकी सात पीढ़ियों में कोई जनरल तो क्या सैनिक भी पैदा नहीं हुआ था, लेकिन उसे वीरतापूर्ण कार्य पसंद थे। अतः वह अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी करके सेना में भरती हो गया। सामान्य सैनिक से बढ़ता-बढ़ता वह फील्ड मार्शल पद तक पहुँचा जबकि उसे सैनिक अफसर बाहर का आदमी समझते थे। सेना में उसका कोई संबंधी नहीं था। उसकी सिफारिश करने वाला भी कोई नहीं था, किंतु इन सबसे

कुछ नहीं होता। व्यक्ति की अपनी निष्ठा, अपना श्रम, अपनी योग्यता और अपनी प्रतिभा वह सबसे बड़ी सिफारिश है जिसे पाने के लिए किसी की खुशामद नहीं करनी पड़ती। अपने आप को साधना, अपने आप को मनाना पड़ता है। जो अपने आप पर, अपने पुरुषार्थ पर विश्वास करते हैं वे किसी दूसरे की सिफारिश का मुँह नहीं ताकते। सिफारिश की आशा करने वाले लोग अपने आप को लँगड़ा समझते हैं, उसे बैसाखी बनाकर प्रगति की सीढ़ियाँ चढ़ना चाहते हैं, किंतु अपने सधे कदमों से सीढ़ियाँ चढ़ने और बैसाखियों के सहारे सीढ़ियाँ चढ़ने में कितना अंतर होता है, सहज ही समझा जा सकता है।

रोमेल को सैन्य संचालन से मतलब था, राजनीति से नहीं। उसने सैनिक अनुशासन का जो परिचय अपने जीवन में दिया, वह सैनिकों के लिए ही नहीं सभी के लिए उपयोगी है। वह चाहता था कि उसे थोड़ी सी सैनिक सहायता और मिल जाए तो वह सारे अफ्रीका से अँगरेजों का सफाया कर सकता है। उसने अपने अधिकारियों से बार-बार आग्रह किया कि उसे दो डिवीजन और दे दिए जाएँ, पर जर्मनी के राजनायकों पर तो दुर्बुद्धि सवार थी। वे अफ्रीका के युद्ध को महत्त्व नहीं देकर रूस से उलझ रहे थे और यह उनकी बहुत बड़ी भूल थी, क्योंकि रूस से जीतना उतना आवश्यक नहीं था जितना कि अफ्रीका से अँगरेजों का सफाया करके स्वेज नहर पर अधिकार कर लेना। इसी भूल के कारण उसकी माँग बार-बार ठुकराई जाती रही।

जर्मनी ने अपने सेनापति को सहायता नहीं दी जबकि इंग्लैंड ने नए टैंक, नई तोपें और पर्याप्त सैनिक अफ्रीका के मोर्चे पर भेजे। उस मोर्चे की कमान भी लॉर्ड वेवल के स्थान पर फील्ड मार्शल आकिन लेक को सौंपी। १८ नवंबर को ब्रिटिश सेना ने पूरी तैयारी के साथ रोमेल की सेना पर आक्रमण किया। जमकर लड़ाई हुई। अपनी शक्ति कम देखकर रोमेल बड़ी चतुराई से पीछे हटा जिससे उसे बहुत कम हानि उठानी पड़ी।

उसके इस पीछे हटने का भी एक उद्देश्य था जिसका बाद में पता चला। उसने पीछे हटते ही २१ जनवरी को ही पलटकर जोरदार

आक्रमण किया और थोड़ी सी सेना के बल पर असावधान ब्रिटिश ८वीं सेना को भाग खड़ा होना पड़ा। १५ दिन में ही रोमेल ने उसे कई सौ मील पीछे धकेल दिया। इसके बाद कुछ महीनों तक दोनों शक्ति संचय में लगे रहे। रोमेल ने फिर पहली चोट की, २८ मई को उसने ऐसा जोरदार आक्रमण किया कि अँगरेजी सेना सकते में आ गई। वह उसे पीछे धकेलता हुआ मिस्र की सीमा तक जा पहुँचा। अजेय समझा जाने वाला तोब्रुक दुर्ग पर भी उसने कब्जा कर लिया।

युद्ध में तोप, तलवार, टैंक आदि सशस्त्रों से भी अधिक सेना और सेनापति का मनोबल और कौशल काम करता है। रोमेल में वह सब था। इसी कारण वह बिजली की सी चपलता से युद्ध का नक्शा ही बदलकर रख देता था। ब्रिटिश सैनिक उसके इस अद्भुत कौशल को चमत्कार समझते थे। ब्रिटिश सेना के लिए रोमेल एक हौआ बन गया था, अफगान युद्ध के हरीसिंह नलवा की तरह। वे समझने लगे थे कि निश्चित ही रोमेल में कोई दैवी शक्ति है, किंतु यह दैवी शक्ति और कुछ नहीं उसका मनोबल ही था। मनुष्य के जीवन संग्राम में भी यह मनोबल ऐसा ही चमत्कार दिखाता है। आपदाओं, कष्ट, कठिनाइयों से भयभीत न हो जो जनरल रोमेल की सी त्वरा, सूझबूझ व मनोबल से परास्त करना सीख लेते हैं वे सदा विजयी होते हैं।

युद्ध सामग्री के अभाव में रोमेल को अफ्रीका में अपने जीते हुए प्रदेश से पीछे हटना पड़ा, क्योंकि उसके अधिकारी अफ्रीका की विजय को महत्वपूर्ण नहीं मानते थे। अतः अंत में उसे सारा अफ्रीका खाली कर देना पड़ा।

रोमेल में नेपोलियन के सेनापतित्व के गुण थे। यही कारण था कि उसके अपनी सेना के सैनिक व अफसर ही उसका सम्मान नहीं करते थे वरन शत्रु सेना के सैनिक व अफसर भी उसका सम्मान करते थे। उसमें असाधारण सैनिक प्रतिभा थी। सामरिक शतरंज का वह पक्का खिलाड़ी था। भूख-प्यास व सरदी-गरमी सहने की उसकी क्षमता भी गजब की थी। भय उसके पास नहीं फटकता था। वह युद्ध में सबसे आगे रहता था। जो कष्ट उसके अपने सैनिकों को सहने

पड़ते थे, उन्हें वह पहले सहता था। यही कारण था कि उसके मातहत लड़ने वाले सैनिक उसके आदेशों पर जान लड़ा देते थे। वे अपने इस वीर नायक की वीरता पर मुग्ध थे, साथ ही उसके प्रेम पर भी। तभी तो वह थोड़े से सैनिकों के सहारे शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित विशाल ब्रिटिश सेना को दो-दो बार पीछे धकेल सका था।

जो लोग नेता बनने, नेतृत्व करने की अभिलाषा रखते हैं उनके लिए रोमेल का यह उदाहरण मार्गदर्शक बन सकता है। कष्ट-कठिनाइयों के वार को पहले अपने सीने पर झेलने वाला व्यक्ति ही कई पीछे चलने वालों का नेतृत्व कर सकता है। उनसे हार मानकर भाग खड़ा होने वाला व्यक्ति नहीं।

अनुशासन का वह पक्का था। अपने आप पर भी वह कड़ा अनुशासन रखता था। वह अपने पर आलस्य व आरामतलबी को तनिक भी हावी नहीं होने देता था। उसकी जीवनचर्या बड़ी कठोर थी। अपने मातहतों से भी वह उसी प्रकार के जीवन की आशा रखता था। जोखिम उठाने और समय का लाभ उठाने में वह कभी हिचकिचाता-चूकता नहीं था। जहाँ सफलता की तनिक भी आशा नहीं होती थी वहीं वह सफल होकर बता देता था जिसे उसके शत्रु और साथी सब आश्चर्य ही मानते थे, किंतु इसमें आश्चर्य कुछ नहीं था। उसका अपने आप पर अनुशासन और प्रखर संकल्पशक्ति का ही चमत्कार था। जिन्हें दूसरों पर अनुशासन रखना हो, वे पहले रोमेल की तरह अपने आप पर अनुशासन रखते हैं। दूसरों को अनुशासित रखने का इससे अच्छा कोई तरीका नहीं है।

रोमेल के अफ्रीका से लौटने पर उसे फ्रांस में मित्र राष्ट्रों द्वारा किए गए आक्रमण को रोकने का काम सौंपा गया। इस काम को वह बखूबी अंजाम देता, किंतु जर्मनी के डूबते सितारों को वह बिना पूरी सैन्यशक्ति के कैसे उबार सकता था? मित्र राष्ट्रों की थल, जल, नभ सैन्यशक्ति उससे कहीं अधिक थी। अतः वह उनके प्रबल आक्रमण को नहीं रोक सका। उसे जर्मनी लौट आना पड़ा।

हिटलर ने विश्व के विनाश के लिए जो आग लगाई थी उसमें वह स्वयं और उसका देश जर्मनी जलने लगा था। ऐसी स्थिति में जर्मनी के कुछ सैनिक व असैनिक अधिकारियों ने देश को बचाने के लिए हिटलर को समाप्त कर देने की योजना बनाई। २० जुलाई, १९४४ के दिन उसे समाप्त करने का षड्यंत्र किया गया जो सफल नहीं हो सका।

दुर्भाग्य से रोमेल के उत्कर्ष से जलने वाले कुछ ईर्ष्यालु लोगों ने यह अफवाह फैला दी कि उस षड्यंत्र में रोमेल का भी हाथ था। इस षड्यंत्र की असफलता के कुछ ही दिन पहले वह बमबारी में घायल होकर अपनी प्रबल जीवनीशक्ति के बल पर मृत्यु के मुख से निकल आया था, किंतु हिटलर के रूप में उसकी मृत्यु बाट जोह रही थी। हिटलर की ओर से उसको आदेश मिला, “विष पीकर मर जाओ नहीं तो तुम पर मुकदमा चलाकर तुम्हें प्राणदंड दिया जाएगा।” ऐसी स्थिति में उसके पत्नी-बच्चों पर भी संकट अवश्य आता, यह सोचकर उसने विवश हो जहर पीकर प्राणांत कर दिया। हिटलर जैसे फासिस्ट का साथ देने का यही तो पुरस्कार मिल सकता था। व्यक्ति को अपनी सेवाएँ व योग्यताएँ सही दिशा में ही नियोजित करनी चाहिए नहीं तो रोमेल की सी गति भी हो सकती है।



महान योद्धा—नेलसन

२९ दिसंबर १७५८। इंगलैंड के नारकोफ जिले में बर्नहैम थॉर्प ग्राम के रेक्टर एडमंड नेलसन के घर आठवाँ बालक जन्मा तो उसे कोई विशेष प्रसन्नता नहीं हुई, वरन दुःख हुआ कि वह थोड़ी सी आय में इतने बालकों का गुजर-बसर कैसे करेगा?

बालक इतना दुबला था कि हाथ में लेते हुए भी डर लगता था। उसके सिर में दरद और शरीर में रोग बना ही रहता था। बचपन में ही माँ भी चल बसी। पिता पर आठ बच्चों का भार पड़ा तो वह खिन्न रहने लगा। उसका जीवन एक बेगार हो गया। वह तो भला हो उसके मामा का कि उसने इस बालक के पालन-पोषण का भार अपने ऊपर ले लिया जिससे पिता का भार कुछ हलका हो गया। मामा को भी इस क्षीण शरीर रोगी बालक से कुछ विशेष आशा न थी।

बालक दुबला-पतला होने के कारण सबकी उपेक्षा का पात्र बनता जा रहा था। उसे अपनी यह उपेक्षा अच्छी न लगी। उसने प्रारंभिक शिक्षा के साथ-साथ अपने मानवीय गुणों का विकास करना आरंभ कर दिया। उसके साहसपूर्ण कार्यों से परिवार में प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। जोखिम के काम में वह आगा-पीछा नहीं करता था। एक बार वह घूमता-फिरता प्रकृति की गोद में दूर निकल गया। नानी देर होती देख उसे ढूँढ़ने आई तो देखा कि एक नदी के पास अकेला बैठा है। उसने पूछा—“तुम्हें यहाँ डर नहीं लगता।” बालक बोला—“मैंने डर को कभी नहीं देखा। वह कैसा होता है?” अपने इसी गुण के कारण यह बालक होरेश्यो नेलसन आगे जाकर एक महान योद्धा तथा अपने देश के गौरव को अक्षुण्ण रखने वाला सेनापति बना।

मामा की आर्थिक स्थिति भी कुछ विशेष अच्छी नहीं थी। १२ वर्ष की आयु में ही नेलसन को जहाज पर नौकरी करनी पड़ी। इसे अपने जहाज पर पहुँचने के लिए बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। १२ वर्ष के बालक को वहाँ कौन सुनता? उन दिनों जहाज की नौकरी में न तो अधिक अर्थ-लाभ ही होता था, न मान-सम्मान ही

मिलता था। नेलसन को भी जहाज के कप्तान ने यही राय दी कि वह यह काम छोड़ दे, किंतु उसे अपने आप पर विश्वास था। वह एक ही जगह रहना उचित समझता था, भटकना नहीं चाहता था।

नेलसन ने अपने प्रारंभिक काल से ही समुद्री यात्राओं के दौरान तट तथा गहराई का सूक्ष्म अध्ययन किया जो आगे जाकर उसके लिए बड़ा सहायक हुआ। उसका आशावादी दृष्टिकोण ही उसकी प्रगति में सहायक बना।

सन् १७७३ में एक दल उत्तरी ध्रुव की खोज में जाने वाला था। उसके लिए जहाज की आवश्यकता थी तथा कुशल मल्लाह भी चाहिए थे। नेलसन को समुद्र व स्थल की जानकारी करने व जोखिम के काम करने में बड़ी दिलचस्पी थी। उसने उस जहाज पर नियुक्त होने के लिए निवेदन किया जो स्वीकार हो गया। इस यात्रा में नेलसन का साहस सबके लिए वरदान सिद्ध हुआ।

नेलसन के अपने गुणों के कारण इंगलैंड के नौसैनिक अधिकारी इससे बहुत प्रभावित थे। २१ वर्ष की आयु में ही वह उच्च नौसैनिक अफसर के पद पर पहुँच गया था। इसे सेंट जुआन के किले पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया। यह किला बड़ी अस्वास्थ्यकर स्थिति में था। इसने विजय तो प्राप्त कर ली पर वहाँ की सड़ती लाशें व अस्वास्थ्यकर जलवायु से इसके बहुत से सैनिक मर गए। नेलसन ने इसे अपने जीवन का एक पाठ मानकर उससे शिक्षा ली।

जिस बालक से उसके परिवार वालों को कोई आशा नहीं थी वही बालक जब युवा हुआ तो अपने साहस, लगन व आत्मविश्वास के बल पर वह सारे इंगलैंड का विश्वासपात्र बन गया। जहाँ भी असफलता की आशंका होती, वहाँ नेलसन को भेजा जाता और वह सफल होकर ही लौटता। वह एक दिन साधारण नाविक के रूप में ब्रिटिश नौसेना में प्रविष्ट हुआ था और एक दिन इंगलैंड के जहाजी बेड़े का कप्तान नियुक्त किया गया।

नेलसन की इस द्रुत प्रगति का कारण उसके मानवीय गुणों के विकास का प्रयास था। साहस तो उसमें कूट-कूटकर भरा था। वह जो

काम करता था, कितनी दृढ़ निष्ठा से करता था। वह उसके इस पत्र से स्पष्ट हो जाता है जो उसने अपने कमांडर-इन-चीफ को लिखा था, “हम सेंटकूज पर अधिकार क्यों न कर सके, इसकी बात मैं न चलाऊँगा। जो कुछ संभव था मैंने किया पर फल कुछ न हुआ। आज मैं सारी सेना का नायक हूँ, कल मेरे गले में जयमाला होगी अथवा मैं संसार में न हूँगा।” यह पत्र लिखकर उसने अपने पुत्र तथा पत्नी को भी संदेश भेज दिए कि वह विजयश्री वरण न कर सकें, मृत्यु ही उसे वर ले तो वे क्या करें? ऐसी दृढ़ निष्ठा ही सफलता दिलाती है।

फ्रांसीसी जहाजी बेड़े पर आक्रमण करने संबंधी मंत्रणा हो रही थी। कप्तान बेरी ने नेलसन से पूछा, “यदि हम जीत गए तो संसार क्या कहेगा?” नेलसन ने इसके उत्तर में कहा, “इस विषय में शंका है ही नहीं। हम जीतेंगे यह निश्चित है, कहानी सुनने को कौन जीवित रहेगा? यह दूसरा प्रश्न है।” कर्म के प्रति निष्ठा ही नेलसन की विजय का कारण थी। नेलसन की मान्यता थी कि जो व्यक्ति सफलता का दृढ़ निश्चय कर लेता है और पूरे मनोयोग से उसमें जुट जाता है तो असफल हो ही नहीं सकता।

फ्रांसीसी जहाज ‘ओरियंट’ में आग लग गई। मस्तूल उड़ गया। सैनिक समुद्र में कूद पड़े। शत्रु सैनिक होते हुए भी ७० सैनिकों को नेलसन ने बचाया। नेलसन में शत्रु सैनिक के जीवन के प्रति भी ममत्व था। बंदी सेनानायकों के प्रति भी उनका व्यवहार मानवीय ही रहा।

अपने अधीन काम करने वाले सैनिकों तथा अफसरों के साथ उसका व्यवहार परिवार जैसा था। उनकी कठिनाइयों की ओर उसका ध्यान रहता था। उनकी प्रगति के लिए वह कमांडर-इन-चीफ को लिखा करता था। अपने उच्चाधिकारियों का वह सम्मान किया करता था। इस व्यवहार के कारण वह सबका ‘अपना आदमी’ हो गया था। उसको कई बार बचाने के लिए उसके सैनिकों ने अपनी मृत्यु को

स्वीकारा था। यथायोग्य व्यवहार का यह गुण उसे एक महान योद्धा तथा सफल सेनानायक बनाने में सहायक हुआ था। उसके उच्चाधिकारी उससे प्रसन्न रहे तथा उसके लिए प्राणोत्सर्ग तक करने को तत्पर रहे। सैनिक जीवन की रुखाई को नेलसन ने स्वभाव से मिटा दिया था।

‘ओरियंट’ के मस्तूल के लट्ठों से कप्तान हैलोवल ने शवपेटी बनाकर नेलसन को भेंट की तथा आग्रह किया कि नेलसन के लिए इसे प्रयुक्त किया जाए। नेलसन ने अपने परिवार के मना करने पर भी स्वीकार किया और बहुत प्रसन्न हुआ। परिवार के लोग इस अशुभ वस्तु को नहीं रखना चाहते थे, पर नेलसन अपने सहयोगी की भेंट का सम्मान करता था। युद्ध कर्म में जीवन व्यतीत करते हुए भी हृदय पक्ष को इतना सजीव रखने के गुण के कारण ही नेलसन अपने सैनिकों का ‘अपना’ बन सका था।

सेंट क्रूज के युद्ध में उसका दाहिना हाथ कट चुका था, अंग-भंग हो जाना एक सेनानायक के लिए बहुत बड़ा दुर्भाग्य था। यह उसी का साहस था कि इस अंग-भंग को सहज रूप में स्वीकार कर ले तथा यह कहे ‘अभी तो मेरा बायाँ हाथ व टाँगें शेष हैं।’ राजा को भी उसने लिख दिया कि उसके स्थान पर किसी अन्य समर्थ व्यक्ति को नियुक्त करें ताकि राष्ट्र की सेवा ठीक प्रकार से हो सके।

नेलसन की योग्यता देखते हुए उसे उसी पद पर रखा गया तथा एक हाथ के नेलसन ने नेपोलियन जैसे विश्वप्रसिद्ध योद्धा से टक्कर ली तथा वीरता के क्षेत्र में एक उदाहरण प्रस्तुत किया कि मनुष्य के एक अंग के कट जाने पर या अपंग होने पर भी यदि वह अपने आप पर विश्वास रखे तो अपने ध्येय में सफल हो सकता है।

नेलसन का सारा जीवन सागर की लहरों पर व्यतीत हुआ। जहाज पर रहने वालों का स्वास्थ्य परीक्षण होता जाता है, यह नेलसन के साथ भी हुआ। वह कुछ समय के लिए स्वास्थ्य सुधार के लिए अपने देश लौटता, पर कुछ ही महीनों के बाद फिर उसके लिए कहीं-

न-कहीं युद्ध छिड़ ही जाता और उसे फिर अपने देश व जाति के गौरव की रक्षार्थ अपने स्वास्थ्य सुधार को बीच में ही रोक देना पड़ता था।

एक युद्ध में उसकी एक आँख भी जखमी हो गई और सदा के लिए ज्योतिहीन हो गई। एक हाथ व एक आँख का नेलसन जब समुद्री युद्धों में अपने राष्ट्र का गौरव बढ़ाने के लिए उतरता तो उसका उत्साह देखते ही बनता था।

ट्रेफलगर के अंतिम युद्ध में नेलसन बुरी तरह घायल हुआ तथा उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु अपने वीरोचित जीवन के अनुरूप हुई। अपने सहयोगियों के कहने पर भी नेलसन ने अपना जहाज सबसे आगे रखा तथा उसकी चाल भी कम नहीं की। फ्रांसीसियों ने इसके जहाज को ही अपना लक्ष्य बनाया तथा नेलसन के माथे व रीढ़ में गोलियाँ लगीं। इस युद्ध में भी विजय इंग्लैंड की ही हुई।

राष्ट्र गौरव के लिए समर्पित जीवन जीने वाले महान योद्धा के रूप में नेलसन का नाम सदा अमर रहेगा तथा प्रेरणा देता रहेगा कि पुरुषार्थ के बल पर बिना किसी विलक्षण योग्यता के भी विलक्षण कार्य किए जा सकते हैं।



लारेंस मान जो दुर्भाग्य से कभी भी हारा नहीं

१९५८ की शीत ऋतु का एक दिन, शीत अपने संपूर्ण यौवन पर थी। भारी हिमपात हो रहा था। निमिसोटा (सं. रा. अमेरिका) का एक कृषक लारेंस मान अपने ट्रक पर बाजार से लौट रहा था। अपने पड़ोसी फ्रेंक रिडल के फॉर्म हाउस के आगे की सड़क बरफ से बुरी तरह पट चुकी थी। वाहन आगे बढ़ाना संभव नहीं था। अतः उसने अपना ट्रक पड़ोसी के गेरेज में ही छोड़ दिया तथा वह पैदल ही अपने फॉर्म की ओर चल पड़ा। उसका फॉर्म वहाँ से कोई एक मील दूर था। उसे क्या पता था कि वह इस एक मील की दूरी को अपने पाँवों से जीवन भर पार नहीं कर सकेगा।

उसके मोटे ओवरकोट पर बरफ के रुई जैसे फाहे जमकर उसे भिगो रहे थे। वह बुरी तरह काँप रहा था। उसके भारी-भरकम शरीर के बोझ से पाँव बरफ में धँस रहे थे। रास्ते के किनारे उगे हुए चिनार के वृक्ष तेज हवा तथा बरफ की मार से अधमरे हो रहे थे।

उसने अपने ओवरकोट के कालर उठाए तथा तेजी से कदम बढ़ाने लगा। उसी समय दाहिनी ओर से च-ड-ड़ की आवाज आई और वह सँभले-सँभले तब तक एक भारी चिनार का वृक्ष टूटकर उस पर आ गिरा। वह संज्ञाशून्य होकर गिर पड़ा।

दो घंटे बाद उसे होश आया तो उसने अपने कमर से नीचे आधे शरीर को दो फीट बरफ में दबे पाया। उसकी जंघाओं को पेड़ के तने ने दबा रखा था। उसने अपने पड़ोसी को सहायता के लिए पुकारा, किंतु दुर्भाग्य से वह भी उस दिन फॉर्म पर नहीं था, पशु खरीदने के लिए हाट पर गया था। पूरे अठारह घंटे तक वह असहाय सा शून्य से भी बीस डिगरी नीचे तापक्रम में बरफ की शय्या पर पड़ा रहा। उसका सारा शरीर ठिठुरकर अकड़ गया था।

जब उसका पड़ोसी हाट से लौटा तो उसने गेरेज में लारेंस का ट्रक खड़ा पाया तो उसकी खोज की और उसे इस असहाय अवस्था में

संज्ञाशून्य पड़ा पाया, उसने तुरंत उसे ७५ मील दूर सेंटपाल नगर के अस्पताल पहुँचाया।

चिकित्सकों ने तुरंत ही उसकी शल्य चिकित्सा की। उन्होंने अपना पूरा प्रयास किया फिर भी वे उसकी टाँगें नहीं बचा सके। अब वह पंगु था—दोनों पाँवों से बेकार। वह अब न ट्रेक्टर चला सकता था न ट्रक तथा न अन्य कृषि यंत्र ही। उसके ४८० एकड़ के फॉर्म, सौ दुधारू गायों तथा २०,००० टर्की नसल के कुक्कुटों की संस्था के संवर्द्धन की क्षमता अब उसमें नहीं रही थी।

जब वह होश में आया तो उसने डॉक्टरों से पूछा मेरे पाँव सही-सलामत तो हैं? डॉक्टरों ने उसे झूठे दिलासे देते हुए, गोलमाल बातें कीं, घुमा-फिराकर उसे धीरज धारण करने की सम्मति दी, किंतु सचाई अधिक समय तक उससे छिप न सकी। यथार्थ विकराल भूत सा अपने भयावह रूप में उसके सामने था—‘जो वह पंगु है’ कहता हुआ मुस्करा रहा था।

उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया। उस धुँधलके में उसके मानस पटल पर अतीत के स्मृति चिह्न उभर आए। सन् १९५३ में जब वह कोरिया के युद्ध से लौटा तथा मेरी से उसका संपर्क हुआ। मेरी की नीली झील सी गहरी पानीदार आँखों में उन दिनों अनेकानेक स्वप्न पालदार सुनहरी नौकाओं की तरह तैर रहे थे। समय ने उन दोनों को एक ही नौका का सहयात्री-जीवनसाथी बना दिया था।

उन्होंने हिकेली के निकट एक वीरान पड़े क्षेत्र को सस्ते दामों पर खरीदकर उसे आबाद करने के लिए रात-दिन एक कर दिया। उन्होंने अपने हाथों से इस विस्तृत फॉर्म की बाड़ बनाई, झाड़ियाँ साफ की, चरागाह के झाड़-झंखाड़ साफ किए तथा उस वीरान भूमि पर स्वप्नों की एक मनोरम नगरी का शिलान्यास किया।

उन्होंने कभी विलासिता से रहना नहीं चाहा, वे कभी सिनेमा देखने नहीं गए। यह फॉर्म ही उनका कर्मक्षेत्र था—यह फॉर्म ही उनका आमोद-प्रमोद गृह था। वे परिश्रम से खेत में सोना उगाते रहे और उसके स्वप्न साकार होते गए। अच्छा फॉर्म हाउस भी उन्होंने बना लिया। खेत आबाद कर लिए, अच्छा अन्न उपजाते थे। अमृत जैसा

दूध देने वाली गायें थी। अच्छी आय देने वाले कुक्कुट थे। तीन फूल से नन्हे बालकों ने आकर मेरी व उसके जीवन में और भी रस वर्षण किया था। उन्हें सुयोग्य, सुशील तथा सच्चे नागरिक बनाने का वह पुनीत दायित्व निभा रहे थे।

तिनका-तिनका चुनकर अपना सुखद नीड़ बनाने के लिए चिड़िया जाने कितना श्रम, कितनी बुद्धि, कितना कौशल नियोजित करती है। वैसे ही इन दोनों ने अपने इस स्वप्न महल को सजाया-सँवारा था। वह सब काल पुरुष की एक क्रूर ठोकर से भूमिसात हो चला था। तिनका-तिनका बिखरा लग रहा था। लारेंस का आत्मविश्वास यह सब स्वीकार नहीं कर सका। दूसरे ही क्षण अंधकार में प्रकाश की रजत रश्मियाँ झिलमिलाने लगीं। उसका संकल्प जाग उठा-“नहीं-नहीं मेरे सपनों को एक छोटी सी दुर्घटना तोड़कर नहीं रख सकती। दो पाँव ही तो गए हैं। शेष सब अंग तो यथावत हैं। मैं इन बचे हुए अंगों से ही अपने नीड़ को बिखरने से बचा लूँगा।”

मेरी उसे विश्वास दिलाती-“तुम अच्छे हो जाओ। हमारा फॉर्म वैसा ही चलेगा। तुम्हारी दो टाँगें ही तो गई हैं। मेरी ये टाँगें भी तुम्हारी ही तो हैं। हम दोनों एक हैं दो नहीं।” उसके इस प्रेम, इस विश्वास पर वह प्रसन्न हो उठा। इसी दिन के लिए विवाह के बंधन को मनुष्य हँसते-हँसते स्वीकार करता है। विवाह के लिए जीवन-साथी की भावनाएँ ही प्रमुख रहती हैं। विवाह के समय मिलने वाला दहेज नहीं।

तीन महीने अस्पताल में रहने के बाद उसे छुट्टी मिली। इतने समय तक मेरी ने फॉर्म को यथावत चलाए रखा। वह अस्पताल से यह संकल्प लेकर निकला था कि वह अपने पाँवों की कमी हाथों तथा मस्तिष्क से पूरी करके रहेगा।

घर आने के दूसरे ही दिन वह अपनी पहियेदार कुरसी को अपने ट्रेक्टर के पास ले गया। अब पाँवों के बिना यह कुरसी ही उसके पाँव थे। उसने मेरी से कहा कि उसे सहारा देकर ड्राइवर सीट पर बिठा दे। मेरी ने पूछा-‘क्यों?’ उसने कहा-“यों ही बैठने का शौक चर्चाया है। मेरी ने उसे सहारा देकर ड्राइवर सीट पर बिठा दिया। उसने बैठते

ही इंजन स्टार्ट कर दिया। मेरी चिल्लाती रही पर वह कब सुनने वाला था। उसने पाँवों से सँभाले जाने वाले ब्रेक आदि पुरजों को हाथों से सँभालते हुए ट्रेक्टर चलाया। इस कार्य में उसे बहुत असुविधा हुई। यहाँ तक कि कई बार तो वह ट्रेक्टर से गिरते-गिरते बचा।

कमजोर तथा तीन महीने तक अस्पताल की शरण रहे शरीर पर एकदम यह भार पड़ने से उसे पुनः अस्पताल जाना पड़ा। इस बार डॉक्टरों ने उसे पूरी हिदायतें दे दीं कि वह इस प्रकार के जोखिम भरे काम न करे। उन्होंने तो यहाँ तक राय दी कि वह अपने फॉर्म को बेच दे तथा सरकार से अपने आपके लिए तथा परिवार के लिए आर्थिक सहायता की माँग करे। लारेंस डॉक्टरों की बात तो सुनता रहा, किंतु वह उनके कथन से सहमत नहीं था। वह सफलतापूर्वक ट्रेक्टर आदि चला सकेगा। इसकी संभावना उस दिन के प्रयोग से सुनिश्चित हो गई थी।

अब की बार अस्पताल से घर आने पर उसने पहले की सी जल्दबाजी नहीं की वरन अपने हाथों को व्यायाम द्वारा इतना पुष्ट बना लिया कि वे हाथ व पाँव दोनों का काम कर सकें। जब उसके हाथों की मांसपेशियाँ पूरी तरह सशक्त हो गईं तो वह पुनः ट्रेक्टर चलाने को तत्पर हो गया। घर वालों के मना करने पर भी वह नहीं माना। कुछ दिनों के अभ्यास से वह पूरी तरह ट्रेक्टर चलाने में सफल हो गया। यह उसकी बहुत बड़ी विजय थी। वह हर्ष से विह्वल होकर बोला—“इस दुर्घटना ने मुझे और भी कुशल तथा समर्थ बना दिया है।”

पाँवों के पक्षाघात के पश्चात भी वह किसान अपने कृषि व्यवसाय को उसी समर्थता से सँभाल रहा है। अपनी पहियेदार कुरसी पर बैठकर वह सारे फॉर्म के कई-कई चक्कर लगा लेता है, खेती कर लेता है, पशुओं को सँभाल लेता है। इसके लिए उसे अपनी कार्यपद्धति में थोड़ा परिवर्तन अवश्य करना पड़ा। वह पहले की तरह ट्रेक्टर, बुलडोजर आदि को खेत पर ही ठीक नहीं करता था वरन गेरेज से उनकी पूरी सँभाल करके तेल, पानी करके ले जाता है। उसके लिए आवश्यक उपकरण उसने बना लिए थे।

खेत के फाटकों के स्थान पर ‘केटल ग्रिड’ लगाए जिनसे वाहन तो आ-जा सकते थे, किंतु पशु प्रवेश नहीं कर पाते थे। यही नहीं पावों

से अपंग हो जाने के कारण उसने फॉर्म पर ऐसी कई श्रम बचाने वाली पद्धतियों का आविष्कार किया जो उसके लिए ही नहीं, अन्य अमेरिकी कृषकों के लिए भी लाभकारी सिद्ध हुई। उसने बरफ हटाने के स्थान पर उसे पिघलाकर पानी के रूप में लाने के यंत्र का निर्माण किया।

अपने कुक्कुटों की विशाल सेना को भोजन देने के लिए उसने ऐसा संयंत्र बनाया जो प्रति सप्ताह २०,००० कुक्कुटों को २५ टन दाना अपने आप दे देता है। उसने ऐसी गाड़ियों का निर्माण भी किया जो अपने आप खाली हो जाती हैं तथा भर जाती हैं। उसने अपने बिजली की पहियों वाली कुरसी गाड़ी बनाने का भी सोचा था, किंतु फिर उस विचार को स्थगित कर दिया, क्योंकि ऐसा करने से उसकी शक्तिशाली भुजाओं के निष्क्रिय तथा कोमल हो जाने का भय था।

लारेंस मान के आत्मविश्वास तथा अद्भुत साहस के सामने दुर्भाग्य भी परास्त हो गया। उसने अपने कृषि उत्पादन में कीर्तिमान स्थापित किया। अमेरिका सरकार ने मक्का उत्पादन पर उसे पुरस्कृत किया। बिना पाँवों वाले व्यक्ति ने सही सलामत पाँवों वालों से बाजी मार ली। यही नहीं पाँवों की पंगुता ने उसके मस्तिष्क को अनूठी क्षमता प्रदान कर दी है। उसका फॉर्म कृषकों के लिए प्रदर्शनी स्थल हो गया है। लोग नए-नए उपकरणों, समय तथा श्रम बचाने वाली पद्धतियों की जानकारी पाने के लिए उसके फॉर्म पर ही नहीं आते, उसे अपने पास परामर्श के लिए बुलाते हैं। वह कृषि उत्पादकों के आमंत्रण पर कृषि प्रवास कार्यक्रम आयोजित करता है। कृषक उसकी मानसिक क्षमता का लाभ उठाते हैं।

लारेंस ने अपना, अपनी पत्नी तथा अपने बच्चों का ही भविष्य सुनिश्चित नहीं किया है वरन विश्व के सम्मुख एक उदाहरण प्रस्तुत किया है कि मनुष्य में वह क्षमता है कि वह अपने स्वप्नों को पंगु होते हुए भी साकार कर सकता है। कष्ट, कठिनाइयाँ तथा हादसे तो मनुष्यों के धैर्य, श्रम, साहस तथा पुरुषार्थ की परीक्षा लेने के लिए आते हैं। जब भी किसी मनुष्य के चरण इनको देखकर भय, आशंका से लड़खड़ाएँ तो उसका यह उदाहरण उन चरणों को नवीन शक्ति, मन में नई उमंग तथा मस्तिष्क में नवीन क्षमताओं का आविर्भाव करता रहेगा।



बाब मार्गन—संकल्प बल की विजय

गाथा जिनके जीवन-पृष्ठों पर अंकित है

हालीवुड की एक फिल्म कंपनी 'हाउ दि बेस्ट वाज वन' फिल्म तैयार कर रही थी। सस्पेंस फिल्म के आधार पर इस फिल्म का कथानक लिखा गया। शूटिंग के लिए स्थान चुना गया एरिजोना। प्राकृतिक दृश्यों और मनोरम झाँकियों की दृष्टि से फिल्म कंपनी के मालिकों और अभिनेताओं को यह स्थान बड़ा ही रमणीक लगा और मन भाया।

घटना अप्रैल १९६२ की है। चलती हुई रेलगाड़ी को लूटने का दृश्य फिल्माना था। एरिजोना से पास के ही एक छोटे से स्टेशन तक छोटी सी रेलगाड़ी जाने वाली थी। इस गाड़ी में दो-तीन डिब्बे ही सवारी के थे और शेष सब मालवाहक डिब्बे। खुले आम डिब्बों में लकड़ी के मोटे लट्ठे रखे हुए थे। निश्चित किया गया कि ट्रेन लूटने का दृश्य इसी गाड़ी पर फिल्माया जाए। दृश्यों की पृष्ठभूमि का निर्धारण करते समय रूपरेखा इस प्रकार बनाई गई कि चलती गाड़ी में फिल्म का नायक माल डिब्बों में रखा हुआ एक लट्ठा पकड़ ले और गाड़ी पर चढ़ने की कोशिश करे।

फिल्म में रोमांच पैदा हो इसलिए यह तय किया गया कि कुछ दूर जाने पर जब कि डाकू लट्ठों के सहारे चलता हुआ डिब्बों को जोड़ने वाले कुंदों पर आ जाए, तब वे जंजीरें जिनसे कि लट्ठे बाँधे हुए हैं खुल जाएँ। फिल्म के दर्शक यह आभास पा जाएँ कि नायक उन लट्ठों के नीचे दब गया है। व्यवस्था इस प्रकार की बनाई गई थी कि संकेत पाकर अभिनेता सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाए। इस फिल्म के अभिनेता थे हॉलीवुड के प्रसिद्ध कलाकार बाब मार्गन। शूटिंग की सारी रूपरेखा उन्हें भलीभाँति समझा दी गई।

जीवट एवं संकल्प शक्ति के धनी पराक्रमी व्यक्तित्व) (४१

सुरक्षा व्यवस्था की दृष्टि से निश्चित किया गया कि संकेत पाकर नियुक्त व्यक्ति उन डिब्बों के लट्ठों पर बँधी जंजीरें खोल दे। हालांकि प्रस्ताव यह भी रखा गया था कि डुप्लीकेट से काम चलाया जाए। भयंकर दृश्यों के लिए अभ्यस्त व्यक्ति मूल अभिनेता के स्थान पर रखे जाते हैं और जिनसे काम कराया जाता है, उन्हें डुप्लीकेट कहते हैं, परंतु बाब मार्गन ने यह प्रस्ताव नहीं माना और यह साहसपूर्ण दृश्य स्वयं पर ही फिल्माने का निर्णय लिया।

सब प्रकार की तैयारियों के बाद रेलगाड़ी अपने स्थान से रवाना हुई। मार्ग में ही बाब मार्गन डिब्बे का लट्ठा पकड़कर गाड़ी पर चढ़ने लगे। उस समय गाड़ी की गति थोड़ी धीरे कर दी गई थी और कैमरे की गति भी उसी अनुपात में और भी धीरे ताकि गाड़ी तेजी से भागती हुई दीखे। लट्ठा पकड़कर बाब मार्गन रेल के डिब्बे में चढ़ने लगे। अभी पूरी तरह चढ़ भी नहीं पाए कि गलती से संकेत देने वाले ने समय से पूर्व ही संकेत दे दिया। जो व्यक्ति जंजीरें खोलने के लिए दूसरी ओर नियुक्त था उसने जंजीर खोल दी और लट्ठे एक-एक कर धड़ाम-धड़ाम नीचे गिरने लगे। बाब मार्गन चूँकि लट्ठा ठीक से पकड़ नहीं पाए थे इसलिए बड़ी जोर से चलती गाड़ी के नीचे गिर पड़े और एक भारी लट्ठा उनके ऊपर!

बाब मार्गन उस समय अपनी दशा की कल्पना भी नहीं कर पाए कि होश गुम हो गए। मनो वजनी लट्ठा अनायास ही ऊपर गिर पड़े तो होश बनाए रखना संभव भी कहाँ होता है? लट्ठा उनके पूरे शरीर पर इस तरह गिरा कि उनका शरीर ही दिखाई नहीं दिया। वहाँ उपस्थित फिल्म कंपनी के कर्मचारियों को इस दुर्घटना का आभास मिला तो गाड़ी रुकने के लिए संकेत दिया—ड्राइवर को। गाड़ी रुकी और सब लोग उस ओर दौड़े जिस लट्ठे के नीचे बाब का शव होने की संभावना थी। शव ही मिल सकता था वह भी पूर्णतया क्षत-विक्षत, क्योंकि लट्ठे के नीचे पूरी तरह दब जाने के बाद जीवित रहने की आशा कैसे की जा सकती है? आरंभ में तो पहचान करना भी मुश्किल था कि किस लट्ठे के नीचे बाब दबे हैं।

खोजबीन करने पर वह लट्ठा मिल ही गया। पाँच-सात व्यक्तियों ने मिलकर वह लट्ठा हटाया तो देखा नीचे बाब पूरी तरह क्षत-विक्षत दशा में पड़े हैं। शुक्र था भगवान का कि उस समय उनके प्राणों ने देह का साथ नहीं छोड़ा था। बचने की उम्मीद तो नहीं की जा सकती थी फिर भी आखिरी साँस तक प्रयत्न करना तो धर्म था। आस-पास कोई अच्छा अस्पताल भी नहीं था, जहाँ उन्हें ऑक्सीजन देकर थोड़ी-बहुत देर जीवित रखा जा सके। पास के ही गाँव में एक छोटे से अस्पताल में जाकर उनके घावों की मरहमपट्टी की गई और हड्डियों का जोड़ बिठाया गया।

थोड़ी देर और चल सकता है। क्या पता बाब की जीवनीशक्ति अभी समाप्त नहीं हुई हो और प्रयत्न किया जाए तो उन्हें बचाया जा सके-यह सोचकर उस गाँव से ७० मील दूर फोनिक्स के एक बड़े अस्पताल में ले जाया गया। डॉक्टरों ने बाब को मृत्यु के जबड़े से खींच लाने का भरसक प्रयत्न किया। दुर्घटना जिस तरह घटी थी और वे जिस तरह बच सके थे-भले ही वह थोड़ी देर जीवित रहें-वह उनके जीवन अवशेष का ही प्रमाण है और अच्छी चिकित्सा-सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएँ तो निश्चित रूप से उन्हें बचाया जा सकता है। इस आधार पर एक आशा की किरण अंधकार की तमसाच्छादित परिस्थितियों में दिखाई देती थी।

फिल्म कंपनी के मालिक जिस तरह भी हो उन्हें बचाने के लिए सचेष्ट थे। क्योंकि अब तक जितनी फिल्म बनकर तैयार हो चुकी थी उसमें लाखों डॉलर (करोड़ों रुपये) फँस चुके थे और बाब मार्गन इस दुर्घटना के शिकार हो गए तो वह सब बेकार ही जाने वाले हैं और कानूनी पेचीदगियाँ अलग उन्हें परेशान कर डालेंगी। इसलिए और कुछ मानवीय कर्तव्यों तथा नैतिक दायित्वों का तकाजा था इसलिए वे पूरे प्रयत्नशील थे कि बाब को बचाया जा सके, परंतु बाब की दशा थी 'अब तब की।' दो बार तो उनकी हृदय गति बंद हुई। शरीर का सारा रक्त बह चुका था। बार-बार पट्टियाँ बदली गईं और एक से एक असरकारक दवाएँ दी गईं, लेकिन खून का बहना बंद नहीं हुआ। खून की बोटलें चढ़ाई और बदली जाती रहीं।

जीवट एवं संकल्प शक्ति के धनी पराक्रमी व्यक्तित्व) (४३

कुशल डॉक्टरों और दक्ष चिकित्सकों के प्रयत्नों से मृत्यु का खतरा तो टल गया, लेकिन डॉक्टरों ने यह घोषित कर दिया कि बाब का जीवन अब बोझ ही रह सकता है। बेहतर यह रहता कि वे मर जाते, परंतु अच्छा भी रहा कि वे बच गए। मौत का खतरा टल जाने के बाद भी वे देर तक होश में नहीं आए। बाब मार्गन की पत्नी बोन-दे-कालों उस समय कैलिफोर्निया में थी। जैसे ही उन्हें इस दुर्घटना का पता लगा वे बदहवास सी दौड़ी आईं। बाब बेहोशी की हालत में घंटों नहीं दिनों तक रहे। पत्नी उनके पास ही बनी रही।

कई दिनों बाद बाब को थोड़ा होश आया और उन्होंने एक आँख खोली। जो लोग वहाँ उपस्थित थे वे सोच रहे थे कि बाब की जीवन शक्ति चुकने से पूर्व यह आखिरी बार उस प्रकाश का भड़कना है। बाब ने जैसे ही आँख खोली कालों वहीं खड़ी थी और उनकी प्रथम दृष्टि अपनी प्रेयसी पर ही पड़ी। बाब के शरीर में कंपन होते देख सब लोगों की निगाहें उनके चेहरे पर ही केंद्रित थीं। कालों भी उन्हीं की ओर देख रही थी। उसने कहा—“मार्गन तुम बिल्कुल भी चिंता न करो और यह विश्वास रखो कि तुम जरूर ठीक होओगे। मेरे लिए, अपनी बेटी के लिए और उस परमात्मा के लिए जिस पर जीवन भर आस्थावान रहे हो। वह तुम्हें अवश्य स्वस्थ करेगा।”

और जैसे इन शब्दों ने मार्गन की चुकती हुई जीवनशक्ति को एक बल दिया और सहारा दिया। जैसे उसके बुझते दीप में किसी ने फिर ज्योति को ज्वलंत बनाए रखने के लिए ईंधन तेल डाल दिया हो। बाब के चेहरे पर एक आशा, विश्वास और जीवन के प्रति आस्था व संकल्प की एक आभा बिखेर दी। जिस समय उनकी चेतना लौटी उस समय उनके मानसपटल पर उस भयंकर दुर्घटना का ऐसा चित्र उपस्थित था कि वे कुछ भी नहीं कह पा रहे थे। शरीर इतना निर्बल और इतना निस्तेज था कि हलन-चलन की अनुमति भी नहीं दे पा रहा था, परंतु वे शब्द जो चेतना की पहली ही पुनर्दीप्ति में उनकी प्राणप्रिय प्रेयसी ने कहे थे, पत्थर की लकीर बनकर खंचित हो गए और उन्होंने मन ही मन ये शब्द दोहराए—“मुझे पहली बार यह विश्वास हुआ कि मैं

अपनी प्रेयसी को छोड़कर अभी इस संसार से नहीं जाऊँगा। अपने डाइरेक्टरों का लाखों रुपया व्यर्थ न जाने दूँगा।” स्वयं को संबोधित कर उन्होंने पश्यंती में कहा—डटे रहो मार्गन! डटे रहो!! अभी तुम्हें काफी काम करने हैं।

डॉक्टरों ने उनकी हृदयगति, नाड़ी और अन्य जीवन-चिह्नों की परीक्षा कर कहा—“मार्गन मृत्यु पर विजयी हो गए हैं।”

महीनों तक उनकी चिकित्सा और उपचार चलता रहा। घावों की मरहमपट्टी की जाती रही। शरीर के कई अंग सड़ने लगे। कुछ ठीक भी हुए, परंतु बायीं टाँग तो इस प्रकार हो गई कि उसका जहर शरीर के अन्य अंगों में फैले इसलिए उसे काट ही देना पड़ा। जैसे-तैसे वे ठीक हो पाए और अस्पताल से छुट्टी मिली।

परंतु अब एक और समस्या उनके जीवन को चुनौती दे रही थी। महीनों तक दवाइयों और इंजेक्शनों पर रहने तथा शारीरिक दृष्टि से पुनः कायाकल्प होने के कारण उनकी भूख ही मारी गई। भूख तो भूख भोजन की इच्छा भी खतम हो गई। पत्नी ने जीवन के प्रति आस्था और संकल्प बल को पुनः उभारा और मार्गन ने स्वसंकेत देना आरंभ किए—भोजन के माध्यम से मुझे पुनः अपनी जीवनशक्ति अर्जित करनी है। वे अपने मन को यही समझाते रहे कि जीवित रहने के लिए भोजन करना ही पड़ेगा।

स्वसंकेत की मनोवैज्ञानिक चमत्कारिक शक्ति ने अपना प्रभाव दिखाया और उनके नियमित भोजन व हलके व्यायाम का भी क्रम बन गया। बायीं टाँग कट चुकी थी और उसके स्थान पर नकली टाँग लगानी पड़ी थी। वे नकली टाँग से ही थोड़े खड़े होते और कुछ दूर चलने का अभ्यास करते।

जिस समय उनकी पत्नी का चिकागो में शो होने वाला था बाब अस्पताल में भरती थे और चाहते थे कि शो के समय चिकागो में रहें। चार माह पूर्व जब उन्होंने यह विचार किया तो उस समय की स्थिति को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता था कि तब तक वे छुट्टी पाने

योग्य हो जाएँगे, पर संकल्पशक्ति के प्रभाव से वे मृत्यु के बल पर अवकाश पाने योग्य दशा तक भी पहुँचे।

इस संकल्प बल को वे ईश्वर के प्रति अपनी आस्था का नाम देते हैं। ईश्वर के प्रति आस्था भी कितनी विधेयात्मक और सृजनात्मक है यह उनके इन शब्दों में व्यक्त होता है—“ईश्वर में केवल विश्वास करने का नाम आस्था नहीं है वरन आस्था तो उस दृष्टिकोण का नाम है जो ईश्वर की सृष्टि और उसकी नियंत्रकता के प्रति आशावादी बने रहने की प्रेरणा देती है।”

बाब मार्गन ने अपने जीवन के सत्रह वसंत हॉलीवुड के चित्रपट जगत में गौरवपूर्वक व्यतीत किए हैं। आरंभ में वे नौसेना के अधिकारी थे, परंतु अपनी प्रतिभा का अधिक अच्छा उपयोग और विकास करने के उद्देश्य से वे फिल्मी दुनिया में आ गए। ऊपर जिस दुर्घटना और उससे चमत्कारपूर्ण ढंग से बाहर आ जाने का विवरण लिखा गया है। कई बार उनसी विपत्तियाँ आईं। विपत्तियाँ किसके जीवन में नहीं आतीं। यदि उन्हें लेकर रोते ही रहा जाए तो वे व्यक्ति को जरूर ही बरबाद कर देंगी। उनका यथार्थ प्रयोजन समझने और अपने विकास की दिशा में उनका उपयोग करने की कला में पारंगत हुआ जाए तो वे व्यक्तित्व को सुदृढ़ ही बनाती हैं।

वस्तुतः भगवान ने सौ पौंड की इस मानवी काया में इतनी क्षमताएँ और संभावनाएँ भर दी हैं कि उन्हें जानते-समझते हुए रोने-झींकने की जरूरत ही नहीं है। उलटे परिस्थितियों का उपयोग अपनी क्षमताओं के विकास में ही करके योग्य बना जा सकता है।



मनस्वी और जीवट वाले ऐसे होते हैं

जून १९६७ का एक दिन। वोगाटा की नेशनल यूनिवर्सिटी के विद्रोही छात्रों ने उस दिन छात्र आंदोलन के नाम पर समाज व नीति विरोधी प्रवृत्ति अपना ली। उन्होंने कई बसों व कारों में आग लगा दी तथा कई पर पथराव किया। जिन वाहन चालकों ने उनकी अनुचित माँगों को पूरा न किया उनसे अभद्र व्यवहार किया तथा मारपीट भी की। इन बसों व कारों में दो बमवर्षक मोटरगाड़ियाँ भी थीं। उन पर जब पथराव हुआ तो उनसे भयंकर विस्फोट हुआ। इस विस्फोट को सुनकर यूनिवर्सिटी के अधिकांश छात्र घटनास्थल पर एकत्रित हो गए तथा लोगों को डराने-धमकाने लगे। वे कह रहे थे, “अब विद्यार्थी-विद्रोह को कोई रोक नहीं सकता। यह विद्रोह सारे देश में फैलेगा।”

विद्यार्थियों की इन उच्छृंखल हरकतों का आधार लेटिन कोलंबिया की तात्कालिक आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियाँ थीं। इन परिस्थितियों से परित्राण पाने को जो राह इन विद्यार्थियों ने अपनाई थी, वह नितांत अनुचित थी।

नए राष्ट्रपति श्री केरलस लीवस रेस्ट्रेपो कोलंबिया को इन परिस्थितियों से मुक्त करने के ताने-बाने बुन ही रहे थे कि यह नेशनल यूनिवर्सिटी कांड सामने आ उपस्थित हुआ। छात्रों की इस उच्छृंखलता की राष्ट्रव्यापी प्रतिक्रिया हुई। यह प्रवृत्ति विद्यार्थी वर्ग के लिए ही नहीं समस्याग्रस्त राष्ट्र के लिए भी घातक थी।

श्री रेस्ट्रेपो ने एक सप्ताह तक तो छात्रों से शांतिपूर्ण ढंग से अपनी बातें मनवाने तथा अपने दायित्वों के अनुरूप क्रिया-कलाप करने पर सहमत करने का प्रयास किया, किंतु विद्यार्थियों ने उनके आग्रह पर ध्यान ही नहीं दिया। वे जानते थे कि विश्वविद्यालय कानून, पुलिस तथा राजनीतिक बंदिशों से मुक्त थे। उनका विद्रोह बढ़ता ही गया।

जीवट एवं संकल्प शक्ति के धनी पराक्रमी व्यक्तित्व) (४७

राष्ट्रपति कोई कठोर कदम उठाना नहीं चाहते थे, किंतु उनकी विवशता थी। लेटिन कोलंबिया की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक अस्थिरता को मिटाने के लिए वे कृत संकल्प थे। समय को देखते हुए वे विश्वविद्यालयों के अधिकारों का अतिक्रमण करने में भी हिचकिचाए नहीं।

उन्होंने आठवें दिन शिक्षामंत्री तथा मुख्य सेनाध्यक्ष को बुलाकर यह आदेश दिया कि एक घंटे के भीतर यूनिवर्सिटी कैंपस को पुलिस की शस्त्रवाही मोटरगाड़ियाँ तथा हलके टैंकों से घेर लिया जाए। रेडियो, टेलीविजन तथा अन्य प्रचार साधनों के माध्यम से छात्रों तक इस निर्देश को पहुँचा दिया जाए कि किसी भी प्रकार की कानून विरोधी हरकत करने पर किसी भी विद्यार्थी को बंदी बनाया जा सकता है। यदि सामूहिक रूप से इस प्रकार के क्रिया-कलाप चले तो हमें विवश होकर विश्वविद्यालय तथा छात्रावास जबरदस्ती खाली कराने पड़ेंगे।

अपने देशवासियों की समृद्धि तथा पुनरुत्थान के लिए श्री रेस्ट्रेपो ने यह बहुत बड़ा राजनीतिक जोखिम उठाना ही उचित समझा। एक नए-नए राजनीतिज्ञ के लिए यह बहुत साहस का काम था। इसकी प्रतिक्रिया उलटी भी हो सकती थी, उन्हें अपने राष्ट्रपति पद से हाथ धोना पड़ सकता था, किंतु उनके लिए राष्ट्रपति पद सेवा का साधन भर था साध्य नहीं।

बढ़ते व्रण को रोकने के लिए की गई शल्य चिकित्सा का परिणाम शुभ ही होता है। छात्रों के विद्रोह को रोकने के लिए राष्ट्रपति का यह कदम वैसा ही शुभ सिद्ध हुआ। एक महीने में पूरी तरह इस छात्र विद्रोह का दमन हो गया। नब्बे प्रतिशत उच्छृंखल छात्रों को सही मार्ग पर आना पड़ा। विद्रोह की रीढ़ टूट गई तथा सभी कॉलेज नियमित रूप से आरंभ हो गए।

लेटिन कोलंबिया के इतिहास में एक उद्धारक की तरह अवतरित होने वाले इस लौहपुरुष का जन्म सन् १९०८ में हुआ। इनके पिता

विश्वविख्यात जीवशास्त्री, केरलास लीरास थे। अपने ६ भाइयों में रेस्ट्रेपो सबसे छोटे थे। पिता से वंश परंपरा में मिली मेधाशक्ति का इन्होंने समुचित विकास किया था।

बोगाटा के हाईस्कूल के परिश्रमी छात्र तथा बाक्सिंग चैंपियन के रूप में उभरते हुए, उन्होंने अपने सहपाठियों का नेतृत्व करना भी सीखा। नेशनल यूनिवर्सिटी में वे छात्रों के नेता के रूप में उभरकर सामने आए। वहीं से उन्होंने एम. ए. तथा कानून की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। शिक्षा समाप्त करके वे राजनीति के क्षेत्र में आ कूदे।

राजनीति की धूप-छाँव सभी ने इस नवागंतुक राजनीतिज्ञ की अगवानी की। सन् १९५२ के हिंसक विद्रोह के समय दंगाइयों की भीड़ ने इनके घर को उजाड़ दिया तथा उसमें आग लगा दी। इन्हें अपने परिवार सहित सन् १९५४ तक मेक्सिको में रहकर निर्वासन का दंड भी सहना पड़ा था। सामूहिक क्षमा मिलने पर ही वे अपने देश लौट सके थे।

अपने राजनीतिक जीवन के थोड़े ही वर्षों में अपनी सूझबूझ, ज्ञान तथा देशवासियों के प्रति सच्चे ममत्व के कारण वे कंजरवेटिव पार्टी के नेता बन गए। इन्होंने कोलंबिया के उत्साही तथा सुशिक्षित युवकों का एक संगठन बनाया जिसका उद्देश्य कोलंबिया प्रजातंत्र की स्थापना तथा भौतिक समृद्धि था।

कई उतार-चढ़ाव देखने के पश्चात वे सन् १९६६ में कोलंबिया के राष्ट्रपति निर्वाचित हुए। कोलंबिया का शिक्षित वर्ग श्री रेस्ट्रेपो का ही पक्षपाती था। उन्हें आशा थी कि वे ही समस्याओं के अंबार में दबे अपने देश का उद्धार कर सकते हैं।

श्री रेस्ट्रेपो ने उनकी इस आशा को फलवती बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। इनके नेतृत्व में कोलंबिया ने आश्चर्यजनक प्रगति की है। यह इन्हीं की राजनीतिक कुशलता, परिश्रम तथा लोकप्रियता का शुभ परिणाम है।

दिन के चौबीस घंटों में से बीस घंटे रेस्ट्रेपो अपने देशवासियों को समर्पित करते हैं। प्रातःकाल पाँच बजे शय्या त्याग से अर्द्धरात्रि

तक व्यस्त कार्यक्रम चलता ही रहता है। पहले से सिगरेट भी पीते थे, पर राष्ट्रपति बनने पर उन्होंने उसका सर्वथा परित्याग कर दिया। यही हाल उनके मद्यपान का भी है। वे कभी मद्यपान नहीं करते। वे कहते हैं कि मुझे कभी इस विषय में सोचने का भी समय नहीं मिलता।

राष्ट्रपति पद पर आसीन होते ही उन्होंने राष्ट्र की समस्याओं से जूझना आरंभ कर दिया। मुद्रास्फीति के कारण वस्तुओं के मूल्य आसमान छू रहे थे। देशवासियों की भौतिक सुख-सुविधाएँ जुटाने में यह सबसे बड़ी बाधा थी। देश पर काफी विदेशी ऋण चढ़ा हुआ था। लेटिन कोलंबिया की अर्थव्यवस्था का आधार कॉफी का निर्यात था। कॉफी के मूल्य उस समय काफी घट चुके थे। जनसंख्या साढ़े तीन प्रतिशत की दर से बढ़ रही थी। अन्य कई आर्थिक समस्याएँ रेस्ट्रेपो को चुनौती दे रही थीं।

इन समस्याओं से निपटना तथा देश की दशा सुधारना एक उजड़ते घर को आबाद करने जैसा कठिन काम था। इस कठिन कार्य को करके दिखाने के लिए ही रेस्ट्रेपो का जन्म हुआ था। १६३ सेंटीमीटर लंबे इस व्यक्ति ने असंभव को संभव बनाया। कोलंबियावासी अपने इस जननेता को प्यार व श्रद्धा से कोलंबिया का सबसे बड़ा ठिगना आदमी कहते हैं।

अपनी असाधारण शक्ति तथा कर्मठता के एक-एक कण का उपयोग राष्ट्रहित में किया। उनका मस्तिष्क देश-विदेश की जानकारियों का कंप्यूटर कहा जा सकता है। यह उनकी अध्ययनशीलता का ही परिणाम है। अपने देशवासियों के सम्मुख अपने अनुभव व ज्ञान के आधार पर वह जो भी बात प्रभावपूर्ण तरीके से रखते हैं, वह उनके मस्तिष्क में स्थायी रूप से बैठ जाती है। जनसहयोग के बल पर ही इन्होंने कोलंबिया को कई समस्याओं से उबारा है।

राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी रेस्ट्रेपो के निर्णय बड़े जोखिम भरे तथा चौंका देने वाले होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा 'पेसो' का अवमूल्यन करने का प्रस्ताव रखा। उस प्रस्ताव के उत्तर में उन्होंने

कोरा उत्तर दे दिया। इतने बड़े मुद्राकोष की प्रतिष्ठा को इस प्रकार नकारने का अर्थ अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से हाथ धो बैठना था, किंतु कोलंबिया के जनसामान्य के हित को ध्यान में रखते हुए उन्होंने यह भी किया।

जनता पर लगने वाले नवीन टैक्सों का भार उन्होंने नहीं लादा वरन पुराने टैक्सों में भी कमी कर दी। जीवनदायी वस्तुओं यथा भोजन, मकान आदि का मूल्य निर्धारित कर दिया तथा उसका पालन भी दृढ़तापूर्वक करवाया।

अब तक लेटिन कोलंबिया की अर्थव्यवस्था कॉफी उत्पादन पर ही टिकी हुई थी। उस पर भार कम करके रेस्ट्रेपो ने सूती वस्त्र, रुई, लकड़ी, शक्कर आदि वस्तुओं का निर्यात आरंभ कराया।

भूमि के प्रबंध विषयक सुधार करके रेस्ट्रेपो ने यह प्रयास किया कि राष्ट्र की भूमि का समुचित उपयोग हो। वह व्यर्थ न पड़ी रहे। दस वर्ष से अधिक परती रहने पर भूमि पर से स्वामित्व की समाप्ति का नियम बनाकर तथा अतिरिक्त भूमि का विक्रय करने का नियम बनाकर उन्होंने भूमि के असमान वितरण को मिटाने का प्रयास किया।

दो करोड़ की जनसंख्या वाले कोलंबिया में स्वास्थ्य, शिक्षा तथा समाज-कल्याण की सुविधाओं का प्रसार भी आवश्यक था। राष्ट्रीय स्तर पर इन्हें बढ़ाने का प्रयास व्यापक स्तर पर किए जाने का काम भी श्री रेस्ट्रेपो ने अपने समय में प्रारंभ कर दिया।

इनके राष्ट्रपति बनने के पहले लिबरल तथा कंजरवेटिव पार्टियों में हिंसात्मक संघर्ष हुआ करते थे। सन् १९४८ में हुए बोगाटा संघर्ष में तो मृतकों की संख्या दो लाख तक पहुँच चुकी थी। इस संघर्ष को समाप्त करने के तथा कोलंबिया को स्वस्थ राजनीतिक संगठन देने के भरसक प्रयास रेस्ट्रेपो ने किए।

दोनों दलों में सद्भाव उत्पन्न करने के लिए उन्होंने अपने दल की ओर से पहल की। संविधान में इस प्रकार के नियम बनवाए जिससे दोनों दल स्वस्थ परंपरा अपनाएँ। इन्होंने अपनी उदार नीति के

कारण दोनों दलों का विश्वास जीता व सामान्य बहुमत के आधार पर भी नियमों में परिवर्तन करने का अधिकार प्राप्त किया।

समस्याएँ तो प्रत्येक राष्ट्र के सम्मुख आती रहती हैं। उनका सच्चा समाधान खोजना तथा उसे हल करना प्रत्येक राजनीतिज्ञ के बलबूते का नहीं होता। कई तो अपने पद की चिंता में ही लगे रहते हैं। कई जोखिम उठा नहीं सकते। पद का मोह छोड़कर राष्ट्रवासियों की अहर्निश सेवा का व्रत निभाने तथा समस्याओं की जड़ तक पहुँचने वाले गिने-चुने राजनेताओं में रेस्ट्रेपो की गणना की जा सकती है।

रेस्ट्रेपो को अपने देशवासियों पर विश्वास है कि वह राष्ट्रहित में जो भी कदम उठाएँगे जनता उसका समर्थन करेगी। जनता को भी विश्वास है कि वे जो भी काम करेंगे उनके हित में ही होगा। ये विश्वास के धागे यों ही नहीं टूट रहे हैं। रेडियो पर, टेलीविजन पर या अपने भ्रमण आदि कार्यक्रमों के माध्यम से वे अपनी बात जनता के कानों तक प्रतिदिन पहुँचाते हैं। उनकी बातों को सुनते-समझते हैं। जनता व राष्ट्रपति के बीच की दूरी को पाटकर उन्होंने स्वयं को प्रत्येक कोलंबियावासी के परिवार का एक सदस्य-अपना ही आदमी बनाया है। वे कहीं भी यात्रा करते, किसी गाँव में जाते उनके साथ कोई अंग-रक्षक नहीं होता। प्रत्येक कोलंबियावासी के हृदय में वे यह बात भर देना चाहते हैं कि तुम तब तक उत्तम शासन नहीं पा सकते जब तक तुम उसके लिए प्रयास नहीं करते। जन-जन में यह चेतना जगाने का काम उन्होंने बखूबी किया है। यही उनकी सफलता का रहस्य भी है।

विगत वर्षों में लेटिन कोलंबिया ने जो प्रगति की है, उसका बहुत कुछ श्रेय श्री रेस्ट्रेपो को है। अपने कर्तृत्व के बलबूते पर वे सन् १९७४ में पुनः राष्ट्रपति चुन लिए जाएँ तो आश्चर्य न होना चाहिए। उनका जीवन इस तथ्य की साक्षी देता है कि राजनीति भी सेवा का बहुत बड़ा माध्यम सिद्ध हो सकती है यदि उसे भावना से अंगीकार किया जाए।



वेलेरी लोंग

जिसने दुर्दैव पर विजय पाई

“मैं आपको धोखे में नहीं रखना चाहता। आपकी बच्ची अब शायद ही सामान्य अवस्था को पा सके। बेहतर यही होगा कि आप इसे हॉस्टल में भरती करा दें, जहाँ इस प्रकार के निष्क्रिय मस्तिष्क के बालक रखे जाते हैं।”

चिकित्साविशेषज्ञ का यह कथन मरजोरी लोंग की ममता को दहला उठा। उसकी वेलेरी कभी अन्य बालकों की तरह जीवन का सुख नहीं भोग सकेगी, कोई प्रगति नहीं करेगी। उसका यह जीवन पग-पग पर उसे व्यथित किया करेगा। इस जीवन से तो..... आगे वह सोच भी नहीं सकी, किंतु वह इतनी कमजोर व साहसहीन भी नहीं थी कि इसे प्रारब्ध या भाग्य मानकर चुप बैठ जाती। उसका पुरुषार्थ बोल पड़ा—नहीं, वेलेरी सामान्य होकर रहेगी। उसका यह दृढ़ संकल्प, प्रगाढ़ निष्ठा सचमुच एक दिन उस बालिका के जीवन को सफल बनाकर रहे। यही नहीं बालिका ने बी. ए. तक शिक्षा भी ग्रहण की व वह आत्मनिर्भर भी बनी।

वह तथा उसका पति इस बालिका के जन्म पर बड़े प्रसन्न हुए थे। उसके आँगन में एक गुलाब का पौधा अंकुरित हुआ था। उन्होंने उस पौधे से कई आकांक्षाएँ बाँध रखी थीं। वह एक दिन बड़ा होगा और अपने सौरभ तथा सौंदर्य से उनके घर को भर देगा, किंतु बालिका जब दो वर्ष की थी उन्होंने देखा कि वह अपने सम वयस्क बालकों की तरह विकसित नहीं हो रही है। वे जो क्रिया-कलाप करते हैं वैसा कुछ वेलेरी नहीं करती तो उन्हें शंका हुई। अब तक तो वे यही समझ रहे थे कि बड़ी होने पर सब कुछ करने लगेगी पर अब तो बहुत देर हो चुकी थी।

मरजोरी का पति रॉयल एयर फोर्स में अधिकारी था। द्वितीय विश्वयुद्ध का समय था। वह युद्ध पर गया था। मरजोरी अपनी दो वर्ष की बालिका को लेकर डॉक्टर के पास गई और डॉक्टर ने परीक्षण के

उपरांत अपना मत व्यक्त किया-“बच्ची के मस्तिष्क का पक्षाघात हो गया है। जन्म के समय इसके मस्तिष्क को कोई आघात लगा है। इंगलैंड के ७५,००० बच्चों की तरह वह भी एक मस्तिष्क की क्रियाशीलता खो देने वाली बालिका है।”

उनके अनुसार उसके सब क्रिया-कलाप मस्तिष्क से असंबद्ध होने के कारण अव्यवस्थित होंगे। जब वह अपनी टाँगों से काम लेना चाहेगी तो वे उलटे-सीधे कोण से जाएंगी। जब वह मुँह को हाथ ले जाएगी, तो वे सिर पर जा पहुँचेंगे। यही हाल उसके बोलने का भी होगा। सामान्य व्यक्ति को किसी भी अंग-संचालन के लिए कोई विशेष चेष्टा नहीं करनी पड़ती। वे अपने आप होते रहते हैं, किंतु जरा सी विकृति ने वेलेरी को उस क्षमता से वंचित कर दिया था।

मनुष्य अपने आप को दीन-हीन मानकर शोक किया करता है, किंतु वेलेरी की स्थिति में रहकर सोचें। ईश्वर ने उसे कितना सुंदर व्यवस्थित शरीर यंत्र दिया है? इस अनुपम देन के अनुरूप ही उसे अपना जीवनलक्ष्य निर्धारित करना ही बुद्धिमत्ता है।

चिकित्सकों और विशेषज्ञों के मत को सुनकर भी मरजोरी निराश नहीं हुई। वह जब अपनी पुत्री के सुंदर सलोने मुखड़े को देखती जिसकी आँखों में भविष्य की सुनहरी आकांक्षाएँ चमक रही होती थीं तो उसे पूरा विश्वास हो जाता था कि वेलेरी अभ्यास करके उन सब क्रियाओं को सीख लेगी जिसे अन्य बालक अपने आप करते हैं।

उन दिनों मस्तिष्क पक्षाघात रोग के बारे में चिकित्सक बहुत कम जानते थे। अमेरिका के एक विशेषज्ञ के मार्गदर्शन व अपनी स्वयं की बुद्धि से उसकी माता वेलेरी को अभ्यास करवाती थी। व्यायाम के द्वारा अंग-संचालन को व्यवस्थित करने का प्रयास चलता ही रहता था। उसमें थोड़ी-थोड़ी सफलता भी मिल रही थी, पर वह नगण्य ही थी। बहुत दिनों के प्रयास के बाद उसने अपने हाथों से खाना सीखा।

माता-पिता के सम्मिलित प्रयास से वेलेरी ने पाँच वर्ष की आयु में तीन पहियों वाली साइकिल चलाना सीखा। अपनी इस साइकिल को चलाते हुए वह बड़ी ही हास्यास्पद लगती थी। फिर भी यह उसके आत्मविश्वास को जगाने में सहायक ही हुई थी।

आरंभ में माता को विश्वास था कि उसकी बच्ची सामान्य बालकों की तरह अंग-संचालन किया करेगी, पर कभी-कभी उसका मन शंका-कुशंकाओं से भर उठता कि कहीं वेलेरी हमेशा के लिए पराश्रित न रह जाए।

यद्यपि बालिका प्रगति कर रही थी, किंतु उसकी गति इतनी मंद थी कि माता का विश्वास कभी-कभी डगमगाने लगा, किंतु बालिका ने अपना विश्वास नहीं खोया। उसने अपना प्रयास जारी ही रखा। वह छह वर्ष की आयु में अपने डगमगाते कदमों से बिना सहारा लिए अपने घर का एक चक्कर लगाने में सफल हो गई। श्रीमती लोंग यह अनुभव कर रही थीं कि उनकी बच्ची को समुचित प्रशिक्षण मिले तो वह सब कुछ सीख लेगी। मस्तिष्क से उसके अंगों का जो तारतम्य टूट गया है, उस खाई को वह अभ्यास और उत्कट अभिलाषा, दृढ़ संकल्पों के बल पर पाट लेगी, किंतु प्रश्न तो यह था कि वह प्रशिक्षण कहाँ से मिले?

उसकी यह इच्छा दूसरे ही वर्ष पूरी हो गई। इंगलैंड में मस्तिष्क पक्षाघात से पीड़ित बालकों का पहला स्कूल क्रायडोन सुरें में खुला। स्कूल के सभी अध्यापक कुशल चिकित्सक भी थे। यहीं वेलेरी को भी भरती कराया गया।

यहाँ उन्हें दैनिक क्रियाओं के प्रशिक्षण मिले, जिन्होंने उसकी कामनाओं को मूर्त रूप दिया। कठिन अभ्यास के उपरांत उसने एक-एक करके खाना-पीना, कपड़े पहनना, चलना, उठना-बैठना आदि काम सीखे। उसके विद्रोही हाथों ने चाकू पकड़ना, कप थामकर होठों तक ले जाना आदि काम सीखे।

आरंभ में उनकी गति बहुत मंद थी। उसे अपना एक बटन बंद करने में पाँच मिनट लगते थे। धीरे-धीरे यह समय कम हुआ। पढ़ने का काम वह बिना शिकायत करती थी। उसके अध्यापक लड़की की इस लगन से बहुत प्रभावित थे।

इस विद्यालय में सात वर्ष तक प्रशिक्षण पाने के बाद वह पहले से अच्छी तरह चल सकती थी फिर भी उसकी चाल एक लँगड़ाते व्यक्ति की सी थी। वह वार्तालाप भी करने लगी थी, किंतु आवाज बेसुरी तथा ग्रामोफोन रिकॉर्ड सी और मंद होती थी। उसकी हस्तलिपि अब पहले से काफी अच्छी हो गई थी।

चौदह वर्ष की आयु में उसे घर बैठना पसंद नहीं था। उसके माता-पिता भी यह नहीं चाहते थे। उसे वेलबर्न हाल स्कूल में प्रवेश दिलाया गया। यहाँ शारीरिक रूप से अयोग्य बच्चों को पढ़ाने की व्यवस्था थी। इस विद्यालय के प्रधानाध्यापक हीवेल विलियम ने उसकी लगन देखकर आश्वासन दिया कि वह सामान्य बालकों की ही तरह पढ़-लिख सकेगी। यहाँ उसको घोर संघर्ष करना पड़ा। मस्तिष्क तो विद्रोही था ही। उसे अपनी अंतःप्रेरणा व आत्मशक्ति के सहारे आगे बढ़ना था। इस कठिन परीक्षा में वह उत्तीर्ण हुई। १७ वर्ष की आयु में उसने प्राथमिक शिक्षा पूरी कर ली।

इसके बाद उसे केंट के प्रायोगिक विद्यालय में पढ़ने भेजा गया। यहाँ भी उसकी अपनी वे आंतरिक शक्तियाँ उसका मार्गदर्शन करती रहीं तथा एक सामान्य किशोरी की तरह उसने १९ वर्ष की आयु में हायर सेकेंडरी परीक्षा उत्तीर्ण की।

मनुष्य यदि चाहे तो वेलेरी जैसी स्थिति से भी ऊपर उठकर भागती हुई सफलता को पकड़ सकता है। जिन्हें ईश्वर ने स्वस्थ शरीर दिया है, वे सफल नहीं होते तो उनके आत्मविश्वास, कर्मनिष्ठा व पुरुषार्थ की कमी ही कही जाएगी। सेकेंडरी तक शिक्षा पा लेने के बाद इस महत्वाकांक्षिणी असामान्य किशोरी से उसके माता-पिता ने पूछा—“अब क्या आगे पढ़ने का विचार है?” उसने कहा—“मैं बी. ए. तक तो पढ़ना ही चाहती हूँ।”

आगे अध्ययन के लिए उसे डार्ट फोर्ट के नार्थ वेस्ट केंद्र कॉलेज ऑफ टेक्नालॉजी में प्रविष्ट किया गया। जब वहाँ के प्रिंसिपल ने उसे प्रवेश पाने की अनुमति दे दी तो उसके माता-पिता फूले न समाए। उन्हें अपनी चिर संचित अभिलाषा पूरी होती नजर आ रही थी।

कॉलेज का यह अध्ययन उसे बहुत भारी तथा थका देने वाला था। नित्य उसे बस में बैठकर उसके घर से उन्नीस मील दूर कॉलेज जाना पड़ता था। वहाँ वह तेजी से नोट्स नहीं ले पाती। अतः वह अपने साथ दो टेप रिकॉर्डर ले जाती थी। घर आने पर अपनी माता की सहायता से नोट्स तैयार करती थी। अपने इस विद्यार्थी जीवन में वह इस तथ्य को आत्मसात कर चुकी थी कि प्रत्येक कार्य को स्वयं ही

कर सके ऐसा आवश्यक नहीं, दूसरों से सहायता लेकर भी अपना काम चलाया जा सकता है।

शारीरिक व मानसिक तारतम्य को बहुत कुछ अपने अभ्यास के द्वारा व्यवस्थित कर लेने के बाद भी वह अन्य सामान्य व्यक्तियों की तरह भाग-दौड़ नहीं कर सकती थी। अधिक लोगों के समुदाय में उसकी यह अभ्यासगत उपलब्धि सामान्य स्वाभाविकता से प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सकती थी, वहाँ वह अन्य लोगों से बेहिचक सहयोग माँग लेती थी। इसे उसने अपनी कमजोरी नहीं वरन एक विशेषता ही माना। इसी बहाने मित्रों, परिचितों की संख्या तो बढ़ेगी। समाज की सारी व्यवस्था भी सहकारिता पर चल रही है।

कॉलेज कैंटीन में वह अपना सामान ला देने के लिए दूसरे छात्रों से अनुरोध करती। वे उसका अनुरोध स्वीकार कर लेते। बाजार में खरीददारी करते समय वह शीघ्रता से पैसे नहीं गिन पाती थी तो वह दुकानदार को बटुवा, थैला देती और उससे वस्तुओं का मूल्य ले लेने का आग्रह करती, किंतु उसने अपने जीवनाकाश पर छितरा आए उन मेघों को तो छिन्न-भिन्न करके रख दिया था। उसकी रूठी हुई खुशियाँ लौट आई थीं। यह सब उसका अपना पुरुषार्थ ही था।

एक दिन वह भी आया जिसके लिए उसका मन वर्षों से प्यासा था। १२ मई, १९५६ को रॉयल एलबर्ट हॉल में रानी एलिजाबेथ ने १४०० विद्यार्थियों को बेचलर ऑफ ऑर्ट्स की सम्मानित डिग्री प्रदान की। उनमें एक वह लड़की थी जिसके लिए डॉक्टरों ने कह दिया था—“इसके जीवन-उपवन में अब कभी बहारें नहीं आ सकेंगी।”

वेलेरी की यह विजय यात्रा यहीं समाप्त नहीं हो गई। उसके पश्चात उसने पुस्तकालय विज्ञान में एम. ए. किया। एम. ए. करने के बाद उसे लंदन ग्रेजुएट स्कूल बिजनेस स्टडीज में पुस्तकालयाध्यक्ष का पद भी मिल गया। उसने अपने परिश्रम तथा आत्मविश्वास के बल पर असंभव को संभव बना दिया था। आत्मनिर्भर व सम्मानित जीवनयापन की उसकी ललक पूरी हुई थी। यह साहस, आत्मविश्वास तथा कर्मनिष्ठा की जो कहानी वेलेरी ने रची है, वह समर्थ शरीर वालों को चुनौती देने को पर्याप्त है।



अनुपम पुरुषार्थी—फ्रेंक वूलवर्थ

वाटर टाउन (सं. रा. अमेरिका) की प्रसिद्ध दुकान 'कारनर स्टोर' में दो कृषक बालक अपनी माँ के जन्मदिन पर भेंट करने के लिए कोई उपहार खरीदने के लिए प्रविष्ट हुए।

अपनी माँ के जन्मदिन पर उन्हें अत्यधिक प्रसन्नता थी। इस प्रसन्नता तथा अपनी माता के प्रति मन में जो प्रेम था, उसे अभिव्यक्त करने के लिए उन्होंने कड़ाके की ठंड की परवाह न की थी। दिन निकलते ही वे अपने पिता के साथ फॉर्म हाउस से गाड़ी में बैठकर चल पड़े थे।

दोनों भाइयों में छोटा चार्ली तो इस दुकान में प्रवेश करने से हिचकिचा रहा था, क्योंकि यह दुकान धनिकों के लिए थी। अपने पिता के साथ वे सदा दूसरी दुकान से खरीददारी किया करते थे। उनकी स्थिति के गरीब व्यक्ति 'कारनर स्टोर' पर नहीं जाते थे, किंतु बड़ा भाई फ्रेंक यह समझता था कि उनके पास केवल ५ पेंस हैं तो वे ५ पेंस की कोई वस्तु खरीद लेंगे। यह सोचकर वह अपने भाई के साथ 'कारनर स्टोर' में चला गया।

कारनर स्टोर में सभी धनवान लोग आते थे। इन बालकों के कपड़े साधारण थे—हाथ से सिले हुए। उनकी गरीबी इन कपड़ों से स्पष्ट झाँक रही थी।

दुकान के कर्मचारियों ने इन्हें चोरी करने के उद्देश्य से भीतर घुस आया समझकर अपमानित किया। इस पर फ्रेंक ने बताया कि ग्राहक हैं। उनके पास ५ पेंस हैं तथा वे उतने ही मूल्य की वस्तु तलाश रहे हैं। मिल जाने पर खरीद लेंगे। फ्रेंक की यह बात कर्मचारी ने नहीं सुनी, क्योंकि ऐसे गरीब ग्राहकों का उनकी तथा उनके मालिक की दृष्टि में कोई मूल्य नहीं था। उसने इन दोनों बालकों को धक्के देकर बाहर निकाल दिया।

फ्रेंक ने दूसरी दुकान से अपनी माता के लिए ५ पेंस मूल्य का अन्य उपहार खरीद लिया, किंतु यह बात उनके गहन अंतःस्तल तक पैठ गई कि एक दिन वह दुकान खोलेगा। उस दुकान में गरीब-अमीर

का कोई भेद नहीं होगा। साधारण से साधारण ग्राहक का भी वह उतना ही आदर करेगा जितना कि महत्त्वपूर्ण ग्राहक का।

फ्रेंक वूलवर्थ के पिता एक साधारण किसान थे। उसके फॉर्म पर कर्जभार इतना अधिक था, जो कुछ उत्पन्न होता वह पेट भरने तथा ब्याज चुकाने में ही पूरा हो जाता था। उसके पिता, माता तथा वे दोनों भाई खेती में ही जुटे रहते थे फिर भी उनकी गरीबी दूर नहीं होती थी।

यही बालक अपनी महत्वाकांक्षा, आत्मविश्वास तथा उद्योग के बल पर एक दिन अमेरिका के ही नहीं, विश्व के धनी-मानी व्यक्तियों में से एक बना। उसका अपना विशाल 'वूलवर्थ भवन' विश्व के सुंदरतम भवनों में से एक माना जाता है। उसका व्यापार तीन महाद्वीपों में फैला था।

वूलवर्थ परिवार का पैतृक व्यवसाय कृषि था। फ्रेंक के परदादा इंग्लैंड में कृषिकर्म करते थे। वे वहाँ से अमेरिका चले आए और न्यूयार्क जिले में खेती करने लगे थे। उसके पिता ने भी यही व्यवसाय अंगीकार किया था। उसके मामा भी एक संपन्न किसान थे।

इसी कृषक परिवार में १३ अप्रैल, १८५२ को जन्मा फ्रेंक व्यापारी बनना चाहता था। उसे कृषि कार्य में तनिक भी रुचि नहीं थी। उसके पिता को उसका यह विचार तथ्यहीन लगता था। उसकी माता अवश्य यह सोचती थी कि खेती में इस प्रकार हड्डियाँ तोड़ने की अपेक्षा उसका पुत्र कोई व्यवसाय करे तो ठीक है, किंतु उसे तनिक भी आशा नहीं थी कि वूलवर्थ परिवार का कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यवसाय में सफल हो सकेगा। व्यवसाय के लिए जो पूँजी चाहिए, उसका भी उनके पास नितांत अभाव था। धन होता तो वे अपने फॉर्म को गिरवी क्यों पड़ा रहने देते?

फ्रेंक ने अपनी माता को एक दिन अपने मन की बात कह दी। वह जानता था कि उसे उसके परिवार तथा रिश्तेदारों से कोई सहायता मिल सकती है तो वह उसकी माँ से ही मिल सकती है। उसकी माँ परिवार की आर्थिक स्थिति से अनभिज्ञ नहीं थी। फिर भी माँ की ममता ने अपने पुत्र को हतोत्साहित नहीं होने दिया।

उसकी माता ने उसके हाथ पर ५० डॉलर के सिक्के रख दिए जो उसने कितने ही वर्षों में बचाए थे। उसके भाई संपन्न थे। वे अपनी बहन को कभी-कभी उपहार न देकर नकद धन दे देते थे। यह ५० डॉलर उस धन का संग्रहित रूप थे।

इन ५० डॉलर से फ्रेंक ने हिसाब तथा बहीखाते का ज्ञान प्राप्त किया। उसे विश्वास था कि बहीखाता व हिसाब सीख लेने पर उसे किसी न किसी दुकान में नौकरी मिल जाएगी, किंतु उसकी यह आशा सफलीभूत नहीं हुई। उसे यह विद्या सीख लेने पर भी कहीं नौकरी नहीं मिली। ४ वर्ष तक उसे अपने फॉर्म पर ही काम करना पड़ा।

फ्रेंक अब १६ वर्ष का हो चला था। उसने गाँव की पाठशाला में ८वीं कक्षा तक ही शिक्षा प्राप्त की थी। उसके लिए उनको दोहरा काम करना होता था। उसका पिता अपने बच्चों को पढ़ाने में कोई रुचि नहीं दिखाता था। बच्चों को पढ़ना होता तो खेत पर काम करते हुए ही पढ़ सकते थे।

इतिहास में उसने नेपोलियन बोनापार्ट के विषय में पढ़ा था, जो एक गरीब घर का सामान्य बालक था और अपने आत्मविश्वास तथा पुरुषार्थ के बल पर सम्राट बन गया था। वह स्वयं नेपोलियन की तरह सम्राट तो नहीं बनना चाहता था, किंतु वह प्रसिद्ध व्यवसायी बनना चाहता था। नेपोलियन की कथा ने उसे आगे बढ़ने को प्रेरित किया था।

हिसाब-किताब सीखने पर भी उसे ४ वर्ष तक किसी दुकान पर नौकरी नहीं मिली तो वह निराश होने लगा। उसे बड़ा दुःख हुआ कि उसने अपनी माता की संचित धनराशि को भी व्यर्थ ही गँवा दिया।

एक दिन उसके पिता ने यह बताया, “फ्रेंक को उसके मामा अपने सहायक के रूप में ४० डॉलर प्रतिमाह पर रखना चाहते हैं। मैंने हाँ कर ली है।” यह सुनकर फ्रेंक को अपने स्वप्न टूटते हुए दिखाई दिए। दूसरे दिन बड़े सवेरे वह घर से भाग निकला।

वह वाटर टाउन की ‘कारनर स्टोर’ में बिना वेतन के नौकर रह गया। उसने अपनी दुकान खोलने के लिए कुछ पैसे बचाए थे। उनसे उसने एक महीने के लिए अपने भोजन तथा निवास की व्यवस्था कर ली।

वह 'कारनर स्टोर' में कर्मचारी की तरह नहीं दुकानदार की भावना से दिन-रात काम करने लगा। उसकी यह भावना दुकान के मालिक से छिपी न रही। थोड़े ही दिनों में उसका वेतन ४ डॉलर प्रति सप्ताह निश्चित हो गया तथा एक वर्ष में ही वह दस डॉलर प्रति सप्ताह तक पहुँच गया।

वह अपने वेतन में से कुछ राशि बचाने भी लगा था। वह स्पष्ट देख रहा था। मंदी का विश्वव्यापी प्रभाव 'कारनर स्टोर' पर भी पड़ा था। ग्राहकों की संख्या निरंतर कम होती जा रही है।

उसने अपने मालिक मि. मूर से इस संबंध में बातचीत की। बुद्धिमत्ता तथा परिश्रम ने मि. मूर को उसका प्रशंसक बना दिया था। फ्रेंक ने पूछा कि यदि वह सहमत हों तो वह अपनी पृथक दुकान खोलना चाहता है जिसमें सस्ती तथा एक ही मूल्य की वस्तुएँ होंगी। आप यदि मुझे उधार माल दिया करें तो मुझे और आपको दोनों को लाभ होगा।

मूर स्वयं ऐसा ही कोई उपाय सोच रहा था जिससे कि इस मंदी से मुक्ति पाई जा सके। उसे फ्रेंक का सुझाव ठीक लगा तथा उसे १५०० डॉलर का माल उधार देने का वचन दे दिया।

फ्रेंक को और क्या चाहिए था। अंधा तो दो आँख भर चाहता था, उसने अपनी पृथक दुकान 'उटिका' नामक औद्योगिक नगर में खोल ली। इस दुकान पर सभी वस्तुएँ ५ सेंट मूल्य की रखी गई थीं। इसमें उसे लाभ तो हुआ, किंतु दो सप्ताह बाद उसकी ग्राहकी बंद हो गई।

फ्रेंक ने उसके कारणों पर विचार किया तो उसे ज्ञात हुआ कि वस्तुएँ कम थीं तथा अच्छी, मजबूत भी नहीं थीं। इस कारण पहले तो खूब बिक्री हुई पर बाद में बंद हो गई।

उसने अपनी दूसरी दुकान लेकेस्टर में खोली जिसमें उसने ५ व १० सेंट मूल्य की वस्तुएँ रखीं। वस्तुएँ पहले से अधिक मात्रा में रखी गई थीं तथा पहले वाली से अच्छी भी थीं। यह दुकान खूब चली।

मंदी के दौरान इस प्रकार की दुकान ग्राहकों के आकर्षण का केंद्र बन गई थी। फ्रेंक वूलवर्थ को अपनी दुकान के लिए अनुभवी

जीवट एवं संकल्प शक्ति के धनी पराक्रमी व्यक्तित्व) (६१

कर्मचारियों की भी आवश्यकता नहीं थी। मूल्य एक होने के कारण उसे आधे वेतन पर कर्मचारी मिल जाते थे।

फ्रेंक की एक दुकान चली तो उसने अपने मित्रों, परिचितों तथा संबंधियों को व्यवस्थापक बनाकर अन्य नगरों में भी ऐसी सस्ती दुकानें खुलवानी आरंभ कर दीं जो सभी उसके अनुभव के कारण सफलतापूर्वक चल निकली थी।

इस प्रकार की दुकानों पर बेचे जाने वाले माल को वह सीधा उद्योगपतियों से खरीदने लगा था। इस प्रकार ग्राहकों को कम मूल्य पर अच्छी वस्तुएँ मिलने लगीं।

इनकी सफलता में फ्रेंक वूलवर्थ का-छोटे-बड़े ग्राहक का भेदभाव नहीं रखना, सब वस्तुओं को आकर्षक ढंग से सजाकर रखना तथा जीवनोपयोगी नित नई वस्तुओं का रखना भी सहायक बने थे।

चार-पाँच वर्षों में ही फ्रेंक वूलवर्थ की ५ तथा १० सेंट वाली दुकानों की सैकड़ों शाखाएँ अमेरिका में खुल गईं। फ्रेंक उन सबको अकेले नहीं सँभाल सकता था। अतः इसे संस्थान का रूप देना पड़ा। उसकी दुकानें बाद में यूरोप तथा दक्षिण अमेरिका में भी फैलीं।

फ्रेंक जिसके पास एक दिन केवल ५ सेंट थे तथा एक दुकान कर्मचारी ने उसे दुकान से बाहर निकाल दिया था, वह अपने पुरुषार्थ के बल पर अरबों की संपदा का स्वामी बन गया। धनपतियों में उसे 'नेपोलियन' कहा गया।

सन् १९२४ में जब उसका देहांत हुआ तो वह अरबों रुपयों की संपदा अपने पीछे छोड़ गया। धन कुबेर बनकर भी वह सीधा-सादा जीवन व्यतीत करता रहा। उसकी पत्नी जेनी भी उसी के स्वभाव की थी। उन्हें धन का कोई गर्व नहीं था। समाजसेवी संस्थानों को दान देने में भी उसने कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी।

उसने अमेरिका के न्यूयॉर्क नगर में एक विशाल मीनार बनाई। यह उस समय विश्व की सबसे ऊँची मीनार थी। उसके स्मारक के रूप में यह मीनार सदा यही संदेश देती रहेगी, "पुरुषार्थियों के लिए कुछ भी असंभव नहीं है।"



प्रखर राष्ट्रवादी

डॉ. राम मनोहर लोहिया

पिता की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी न थी कि पुत्र को पढ़ने के लिए इंग्लैंड भेज सकें और पुत्र की हार्दिक इच्छा थी विदेश जाने की, परंतु अपने पिता हीरालालजी की विवश स्थिति से वह परिचित था, इसलिए जिद भी नहीं कर सकता था।

‘जहाँ चाह वहाँ राह’ के अनुसार राम मनोहर लोहिया की शिक्षा का खरच उठाया—अग्रवाल जातीय कोष ने। लोहिया जी इंग्लैंड पहुँच गए। उन्होंने देखा कि अँगरेज लोग भारतीयों को बड़ी नीची निगाह से देखते हैं। देखें भी क्यों न? आखिर वे हमारे शासक थे और हम उनके गुलाम। लोहिया जी का इंग्लैंड में मन नहीं लगा।

इण्टर के बाद लोहिया जी आगे पढ़ाई के लिए कलकत्ता (कोलकाता) आ गए। कलकत्ता में अच्छे शैक्षणिक स्तर की दृष्टि से दो ही कॉलेज श्रेष्ठ माने जाते थे—पहला ‘स्कॉटिश चर्च कॉलेज’ और दूसरा ‘सेंट जेवीयर्स कॉलेज’। किंतु ये सरकारी कॉलेज थे और वहाँ पढ़ने में उन्हें गुलाम बनाए रखने वाली सरकार के अधीनस्थ शिक्षकों से ज्ञानार्जन कम, घुटन ही अधिक महसूस होती थी, इसीलिए उन्होंने विद्यासागर कॉलेज को चुना। यहाँ की पढ़ाई का स्तर भी गिरा हुआ माना जाता था और परीक्षाफल भी कोई अच्छा नहीं निकलता था। राष्ट्रवादी लोहिया ने इसे ही चुना। इतना स्वतंत्र और देश भाषा के प्रति उत्कृष्ट सम्मान और भक्तिभाव रखने वाला युवक यह अपमान कैसे स्वीकार कर सकता था? लोहिया का मन डगमगाने लगा। इंग्लैंड में पढ़ने के संबंध में पहले भी कोई दृढ़ निश्चय नहीं था।

मुश्किल से एक सप्ताह ही इंग्लैंड रुके होंगे और लोहिया जी तत्काल बर्लिन पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने बर्लिन विश्वविद्यालय में अपना नाम लिखवाया। वहाँ के नियमानुसार छात्र को अपना शिक्षक तथा परीक्षक स्वयं ही चुनना पड़ता था। उन्होंने अपना शिक्षक चुना

प्रो. बर्नर जंबार्ट को। अर्थशास्त्री के रूप में उन्हें विश्वख्याति प्राप्त थी और इसी कारण लोहिया जी उन्हें पहले से ही जानते थे।

नियमानुसार डॉ. लोहिया को उनसे साक्षात्कार करना पड़ा। प्रो. ने उनसे कुछ प्रश्न पूछे जिसका उत्तर लोहिया ने अँगरेजी में दिया। सुनकर जंबार्ट मुस्कराए और बोले, “मेरे बच्चे मैं अँगरेजी नहीं जानता हूँ।” यद्यपि ऐसी बात नहीं थी, लेकिन प्रोफेसर अँगरेजी के स्थान पर स्वदेश की भाषा को अधिक महत्त्व देते थे और विश्वविद्यालय यद्यपि अंतर्राष्ट्रीय स्तर का था फिर भी वहाँ जर्मन भाषा के माध्यम से ही पढ़ाई होती थी।

डॉ. लोहिया प्रोफेसर का मंतव्य समझ गए और बोले, “मैं तीन महीने बाद आपसे मिलूँगा।”

दिन-रात मेहनत करके उन्होंने जर्मनी भाषा सीख ली। फिर जंबार्ट के पास पहुँचे। वे तो लोहिया को कभी का भूल से गए थे। लोहिया ने उनसे जर्मनी में बातचीत की। अनेक विषयों पर खूब चर्चा हुई। अंत में प्रोफेसर ने पूछा, “आप कितने वर्षों से यहाँ हैं?”

‘जी’ लोहिया ने उत्तर दिया, “मुझे कुछ ही महीने हुए हैं। पहले मैंने आपसे तीन माह बाद मिलने का वायदा किया था न।”

जंबार्ट को सभी बातें याद आ गईं फिर भी चर्चा चली तो लोहिया के इंग्लैंड से जर्मनी आने की बात सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए और उनके अपूर्व राष्ट्र प्रेम तथा आत्माभिमान की भावना को मुक्त-कंठ से सराहने लगे।



मुद्रक-युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)